इसी लिङ्गके पूजाके प्रभावसे तुम हमारे जीवनस्वरूप हुए हो, इसीसे त्रैलोक्यमें 'जीव' यही नाम प्राप्त होगा। प्रपञ्चातीत तुमने उत्तम वाक्प्रपञ्च द्वारा स्तव किया है, इसी वाक्प्रपञ्चके आधिपत्य निबन्धनसे तुम वाचस्पति हो। तीन वर्षतक त्रिकाल भक्ति भावसे इस स्तोत्रका पाठ करनेसे अथवा श्रवण करनेसे वाग्विशुद्धि होगी। जो लोग इस वायव्य नामक स्तोत्रका दिन प्रति पाठ करेंगे, उत्तम कार्य्यका समय उपस्थित होनेसे वह बुद्धिहीन न होंगे। इस स्तोत्रका नियमानुसार हमारे समीप पाठ करनेसे अविवेकी मनुष्योंको भी दुर्वृत्तितामें प्रवृत्ति न होगी। प्राणी इस स्तोत्रका पाठ करनेसे कभी ग्रहजनित पीड़ाको प्राप्त न होगा। अतएव हमारे सम्मुख इस स्तोत्रको पढ़ना चहिये। जो मनुष्य नित्य-प्रातःकाल उठकर यह स्तोत्र पाठ करेगा, मैं उसकी सुदारुण बाधा सम्पूर्णरूपसे हरण करूंगा। प्रयत्नपूर्व्वक, तुम्हारे प्रतिष्ठित इस लिङ्गकी पूजा करके जो मनुष्य इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसकी मनोवांछा पूर्ण होगी। शिवने, आङ्गिरसको यह वर दे तत्पश्चात् ब्रह्माको इन्द्रादि देवगणको और यक्षकिन्नर भुजङ्गादि सबको आह्वान किया। शिव, उन लोगोंका आगमन देखकर ब्रह्मासे बोले "विधि! अपने गुणोंमें सर्व्वश्रेष्ठ इस मुनि वाचस्पतिको हमारे कथनानुसार सब देवप्रवरगणका गुरु करो। सबके प्रीतिलाभके लिये इनको यथाविधि सुराचार्य्य पदपर अभिषिक्त करो। हमारे प्रीतिपात्र यह वाचस्पति अत्यन्त बुद्धिके अधीश्वर होंगे।" ब्रह्माने, "महाप्रसाद" कहकर शिवजीके आदेशको मस्तकपर लेकर, अङ्गिरोनन्दनको तत्क्षण् सुराचार्य्य किया। देवदुन्दुभि बजने लगीं, अप्सरागण नाचने लगीं। देवगण प्रीतिप्रफुल्लवदनसे गुरुपूजा करने लगे। वसिष्ठादि ऋषिगणने मन्त्रपूत जल द्वारा बृहस्पतिका, अभिषेक किया। गिरीशने, वाचस्पतिको पुनः अन्य वर दिया, हे धर्म्मात्मन्! कुलानन्द! देवपूज्य! आङ्गिरस! तुम्हारा स्थापित यह सुबुद्धिपरिवर्द्धक लिङ्ग, काशीमें बृहस्पतीश्वर नामसे विख्यात होगा। पुष्यानक्षत्रयुक्त बृहस्पतिवारको मनुष्यगण इस लिङ्गकी पूजा करके जो कुछ करेंगे, वही सिद्ध होगा। मैं कलियुगमें बृहस्पतिका लिङ्ग गोपनकर रखूंगा। मनुष्य इस लिङ्गके दर्शन मात्र होसे प्रतिभाशाली बन सकता है। चन्द्रेश्वर लिङ्गके दक्षिण वीरेश्वर शिवके नैऋत्यमें अवस्थित बृहस्पतीश्वर लिङ्गकी पूजा करनेसे बृहस्पतिलोकमें सम्मान सहित वास करता है। छः मास इस शिवलिङ्गकी सेवा करनेसे, सूर्य्योदयमें अन्धकारके सदृश, गुरुपत्नीगमन-सम्भूत पाप भी अवश्य विनष्ट होता है। अतएव, यह महापातक

विनाशन वृहस्पतीश्वर लिङ्गका फल गोपनीय है; यह किसी स्थानमें प्रकाशित नहीं किया गया। देवदेव, यही सब वर देकर उस लिङ्गमें अन्तर्हित हो गये। ब्रह्माने, इन्द्र, विष्णु और वृहस्पतिके सङ्ग इस लोकमें आकर वृहस्पतिको इस लोकमें अभिषिक्त करके इन्द्रादि देवगणको विदा देकर विष्णुकी अनुमतिसे, स्वधामकी शोभा सम्पादन की। अगस्त्य बोले, हे लोपामुद्रे! शिवशर्म्माने, वृहस्पतिलोक अतिक्रमपूर्व्वक, प्रभामण्डलमण्डित शनिलोक देखा। हे शुचिस्मिते! उस समय शिवशर्म्माके पूछनेसे पारिषद्प्रवरद्वय उस अष्ट नगरीका विवरण, उनसे करने लगे।—हे द्विज! मरीचिनन्दन कश्यपके औरस और दाक्षायणीके गर्भसे सूर्य्यको उत्पत्ति हुई। प्रजापति त्वष्टाकी कन्या संज्ञा, उनकी भार्य्या थीं। सुदीप्ततपःसमन्विता रूपयौवनशालिनी संज्ञा, स्वामीकी अत्यन्त प्रिय थीं। संज्ञा, सूर्य्यमण्डलका तेज और आदित्यका उष्णारूप, गात्रमें ग्रहण करती थीं सही; किन्तु उनका शरीर मानो क्रमशः (तेजोहीन) मन्द होने लगा। यह अण्डस्थित बालक न मरे, कश्यपनेस्नेहपूर्व्वक यह बात कही थी, इसी कारण तबसे जगतमें सूर्य्य, मार्त्तण्डके नामसे अभिहित होने लगे। तिग्मरश्मिमाली मार्त्तण्ड, जिसके द्वारा त्रैलोक्य सन्तापित करते हैं, वही अभ्याधिक तेज संज्ञाके लिये असह्य हुआ। ब्रह्मन्! तेजोनिधि आदित्यने, उन संज्ञाके गर्भसे दो प्रजापति पुत्र—ज्येष्ठ वैवस्वत मनु, कनिष्ठ यम और यमुना नाम्नी एक कन्या उत्पादन की। संज्ञा, सूर्य्यका अतितेजोमय रूप सह्य करनेमें जिस समय अत्यन्त असमर्था हुईं, तब उन्होंने अपने शरीरसे अपनी सवर्णा मायामयी छाया निर्माण की। तदनन्तर छाया प्रणामपूर्व्वक हाथ जोड़ संज्ञासे कहने लगी, 'देवि! मैं आपकी आज्ञाकारिणी हूं; क्या करूं? मुझे आदेश कीजिये, तदनन्तर संज्ञा, छायासे कहने लगीं, हे मेरी सवर्णा सुन्दरी! मैं अपने पिता विश्वकर्म्माके गृह जाती हूं, और हे कल्याणि! तुम मेरे आदेशसे निःशङ्क मेरे गृहमें वास करो। यह मनु, यह यमज यम-यमुना, इन तीनो शिशुओंको अपने अपत्यवत् देखना। हे शुचिस्मिते! स्वामीके निकट यह वृत्तान्त न कहना।" यह सुन छाया, विश्वकर्म्मादुहिताने संज्ञादेवीसे कहा, 'देवि! यह वृत्तान्त न कहनेके अपराधमें जबतक मेरा केशपाश न ग्रहण किया जावेगा, अथवा जबतक शाप सम्भावना न होगी, तबतक यह आचरण मैं कीर्त्तन न करूंगी; हे देवि! आप यथासुख गमन कर सकती हैं। संज्ञाके अन्य पूर्व्वोक्त आदेशपर, छायाने 'वही करूंगी,' कहकर स्वीकार किया। संज्ञा पिता त्वष्टा विश्वकर्म्माके निकट आकर प्रणाम करके बोलीं, "पिता! महात्मा, तेजोनिधि आदि-

पुत्र काश्यपके उस तीव्र तेजको मैं सह नहीं सकती।" उसकी बातें सुनकर पिताने उसे बहुत भर्त्सना की और बारंबार पतिके समीप जानेका आदेश करने लगे। उस समय संज्ञा, महाचिन्तान्विता होकर 'स्त्रियोंकी चेष्टाको धिक्!' कहकर अपनी निन्दा करने लगीं, और स्त्रीजन्मकी अतीव निन्दा करने लगीं। स्त्रियोंकी कभी स्वतन्त्रता नहीं, इस पराधीन जीवनको धिक्! शैशव, यौवन और वार्द्धक्य सब समय स्त्री जाति यथाक्रम पिता, स्वामी, पुत्रके निकट भय पाती हैं। हाय मुझ दुर्वृत्ताने मूढ़ता प्रयुक्त हो पतिगृह परित्याग किया है। अबतक भी सम्पूर्ण वृत्तान्त स्वामीके अवगत नहीं हुआ पतिगृहमें अवश्य जा सकती हूं, किन्तु पूर्ण-मनोरथा सवर्णा वहां है। (वह छोड़ेगी क्यों? और दोनोंको देखकर स्वामी सब जान जांयगे) पिताके अतीव भर्त्सना करनेपर भी यदि मैं इस स्थानमें रहूं, ऐसा होनेसे, अति प्रचण्ड चण्डरश्मि मातापिताके पक्षमें अति भयङ्कर होंगी। मनुष्य जो "हाथसे ज्वलन्त अङ्गार आकर्षण" यह पक्की बात कहा करते हैं, मैंने उसे स्पष्ट ही देखा, यही अपने हाथमें ज्वलन्त अङ्गार आकर्षण है। पतिगृह मूढ़तासे विनष्ट हुआ, पितृगृहमें भी मङ्गल नहीं है। सुन्दर प्रथम वयस त्रिभुवनवाञ्छितरूप, सबका प्रलोभन स्त्रीत्व, तिसपर अति निर्म्मल कुल, फिर स्वामी ऐसे सर्व्वज्ञ, लोकनयनके तमोहर; सर्व्वकर्म्मसाक्षी, सर्व्वगामी और सर्व्वस्वरूप हैं। मेरा मङ्गल किस प्रकार होगा? अनिन्दिता संज्ञाने इस प्रकार चिन्ता करके, तपस्या करनेके लिये वड़वा रूपसे गमन किया। उत्तर कुरुमें जाकर नीरस तृण मात्र भोजन करके पतिको हृदयमें स्थापनपूर्व्वक, तपस्याके प्रभावसे "पतिका तेज जिसमें उत्तम रूपसे सह्य कर सकूं" इसी कामनासे तीव्रतपस्या करने लगीं। रविने उसी सवर्णा छायाको ही संज्ञा समझकर, उनसे अष्टममनु, उत्तम गुणवान सावर्णि, द्वितीय पुत्र शनि और तृतीया तपती नाम्नी मंगलमयी कन्या उत्पादन की। सवर्णा, अपने अपत्यगणपर अधिक स्नेह करने लगीं और स्त्री स्वभावके दोषसे सपत्नीसम्बन्धप्रयुक्त पूर्व्वज वैवस्वत मनु आदिके प्रति उतना स्नेह न करतीं। ज्येष्ठ मनु उसे सहन करते। किन्तु यम, खाद्य सामग्री अलङ्कार और लालन-पालन करनेके सम्बन्धमें सावर्णि आदि कनिष्टगणकी सबलता सहन न कर सके। यमने एक दिन बालकताप्रयुक्त और भवि-तव्यताके गौरवसे रोषवशतः सवर्णाको पद उठाकर तर्ज्जना की। उस समय अतीव दुःखिता सावर्णिजननीने क्रोध करके उन्हें शाप दिया, "अरे पापिष्ठ! मुझे आघात करनेको तूने जो पांव उठाया है, अविलम्ब ही वह पैर तेरा गिर पड़े।" मातृशाप-

परित्रस्त यमने भी "रक्षा करो, रक्षा करो" कहकर पिताके समीप वह सब कीर्त्तन किया। माता सब पुत्रोंपर समान व्यवहार करती हैं, मा किन्तु वह नहीं करतीं, इसीसे मैंने बालकत्व या मोहप्रयुक्त हो, उन्हें केवल पांव दिखाया था, किन्तु प्रहार नहीं किया। वह अपराध मेरा दूर कीजिये। हे गोपते! मातृशापसे मेरा यह पांव जिसमें गिर न पड़े। सूर्य्यदेवने कहा, बहु सहस्र अपराध करनेपर भी जननी पुत्रको शाप नहीं देतीं, अतएव हे बालक! धर्मज्ञ सत्यवादी तुम्हें जो उन्होंने क्रोध करके शाप दिया, इस विषयमें कोई कारण होगा। मातृशापको एकबारगी ही अन्यथा कभी कोई कर नहीं सका। कृमिगण तुम्हारे पांवका मांस लेकर भूतलमें जांयगी, (तुम्हारा एक पांव पूय-क्लिन्न और कृमिव्याप्त होगा) इस प्रकार तुम्हारी मातृशापका साफल्य होगा और तुम भी रक्षित होगे। सूर्य्यदेव, पुत्रको इस प्रकार आश्वास देकर अन्तःपुरमें पधारे, अति विलम्बके पश्चात् स्त्रीके देख पड़नेपर बोले अयि भामिनि! अपत्य सभी समान हैं, तथापि तुम कनिष्ठ सावर्णि प्रभृतिके प्रति अधिक स्नेह क्यों करती हो? सूर्य्यदेवके इस प्रकार पूछनेपर भी जब छायाने उन्हें कुछ जवाब न दिया, तब आत्म-समाधान-पुरस्सर सविता सब बातोंसे अवगत हुए। उस समय भगवान् सूर्य्यदेव अभिशाप देनेको जब उद्यत हुए, तब छायाके यथार्थ पूर्व्ववृत्तान्त कहनेपर उससे भगवान् सूर्य्यदेव भी सन्तुष्ट हुए। सत्य कथा कहनेपर रविने छायाको निरपराधिनी जानकर शाप नहीं दिया; क्रोधयुक्त विश्वकर्म्माके समीप गये। त्वष्टाने क्रोधसे दग्ध करनेकी अभिलाषा जान तिग्मतेजा सूर्य्यको पहले शान्त करके हर्षसे पूजा की। त्वष्टा पहले ही सूर्य्यदेवका अभिप्राय जान शीघ्र ही उनसे कहने लगे, हे सूर्य्य! संज्ञा, आपके अति तेजसे भयभीत हो उत्तर-कुरुमें बड़वा होकर शाद्वल बनमें विचरण करती है। तेज और नियम प्रभावसे, सर्व्वभूतोंकी अधृष्या, आर्य्यचारिणी स्वभार्य्याको आज आप देखेंगे। विश्वकर्म्माने सूर्य्यकी अनुमति पाकर यत्नपूर्व्वक सूर्य्यदेवको कुंद नामके यन्त्रपर चढ़ाकर खराद दिया। उससे सूर्य्यदेव अत्यन्त कमनीय हो गये। अनन्तर सूर्य्यने श्वशुरको अनुमति पाकर शीघ्र उत्तर-कुरुमें जाकर साक्षात् तपोलक्ष्मी-सदृशी, श्रद्धा तपश्चारिणी, बड़वानलतेजस्विनी, योग मायावलम्बन किये नीरस तृण मात्राहारा एक बड़वाको देखा। सूर्य्यने नीरस तृणमात्रभोजन और अक्षीणतेज अवलोकन करके, बड़वारूपिणी विश्वकर्म्मा-तनयाको पहचान आप भी अश्वरूप अवलम्बन करके बड़वाके मुखमें सङ्गम किया। बड़वारूपिणी संज्ञाने, परपुरुषकी

शक्तासे अत्यन्त शीघ्रतापूर्व्वक नासिकापुट द्वारा वही सूर्य्य-वीर्य्य वमन कर दिया। उसीसे देववैद्यप्रवर अश्विनीकुमारद्वयने जन्म ग्रहण किया। उस समय रविने, अपना अनुरूप रूप संज्ञाको दिखाया। उसी समय पतिव्रता संज्ञा भी, मनस्तापहारी नयनानन्दकर कमनीयरूप पति सूर्य्यको अवलोकन करके सन्तुष्ट हुई और परम निर्वृतिको प्राप्त हुई। तपस्यासे क्या दुर्लभ है? तपस्या ही परम मङ्गल है तपस्या ही परम धन है, तपस्याको ही देवत्वका परम कारण जानना। शिवशर्म्मन्! आकाशमें ऊर्द्ध-अधोदेशमें यह जो अतिदीप्तमत् जोतिश्चक्र-स्वरूप अवलोकन करते हो, समझो, यह सभी तपस्याका सुमहत् तेज है। पूर्व्वोक्तरूपसे सवर्णा छायाके गर्भसे सूर्य्यके औरससे शनैश्चर उत्पन्न हुए। तदनन्तर सर्व्वदेववन्दिता वाराणसी पुरीमें जाकर शिव लिङ्ग स्थापनपूर्व्वक अति विपुल तपस्या करके उन्होंने उस शिवाराधनाके फलसे यह उच्चलोक और ग्रहत्व प्राप्त किया है। काशीमें सुशोभन शनैश्चरेश्वरलिङ्ग दर्शन और शनिवारको उनकी पूजा करनेसे शनिपीड़ा नहीं होती। विश्वेश्वरके दक्षिण और शुक्रेश्वरके उत्तर अवस्थित शनैश्चरेश्वर लिङ्गकी पूजा करनेसे लोग इस शनिलोकमें आनन्द लाभ करते हैं। काशीमें रहकर इस पवित्र अध्यायका श्रवण करनेसे ग्रहपीड़ा नहीं होती, उपसर्ग भय भी नहीं रहता।

सप्तदश अध्याय समाप्त ॥१७॥

अष्टादश अध्याय।

सप्तर्षिलोक वृत्तान्त।

अगस्त्यने कहा, मुक्तिपुरी काशीके सुख्यात, मायापुरीमें पञ्चत्वप्राप्त, मथुरा-वासी ब्राह्मण शिवशर्म्माने, विष्णुपुरी देखनेके प्रभावसे, अन्तमें विष्णुलोक गमन करते हुए इस कथाको सुनते सुनते सप्तर्षिमण्डल देख पाया। चारण मागध शिवशर्म्माका स्तव करने लगे, देवकन्या "इस जगह क्षणकाल अवस्थान करिये, अवस्थान करिये" इस प्रकार प्रार्थना करने लगीं, फिर निश्वास परित्यागपूर्व्वक देवकन्या उठ खड़ी हुई और उन्होंने कहा, "हमलोग मन्द भाग्या हैं; यह पुण्यवत्तम, पुण्यतमलोक समुदयको प्राप्त होगा।" विमानस्थित शिव-शर्म्माने, उन लोगोंके मुखसे इस प्रकारकी बातें सुनते सुनते विष्णु-पारिषद्द्वयसे पूछा, "देवद्वय! यह तेजोमय अतुलनीय शुभलोक किसका है?" ब्राह्मणकी यह बात सुन-कर विष्णुपारिषद्सत्तमयुगल कहने लगे, हे शुभबुद्धि शिवशर्म्मन्! विश्वस्रष्टाके नियुक्त निर्म्मल सप्तर्षि, प्रजासृष्टिके लिये इस स्थानमें सतत वास करते हैं। मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा और

महाभाग वसिष्ठ, यह सप्तर्षि ब्रह्म के मानसपुत्र हैं। यह सातो ही पुराणमें 'ब्रह्मा' कहकर निश्चित हुए हैं। सम्भूति, अनुसूया, चमा, प्रीति, सन्नति, स्मृति और ऊर्ज्जा यह सातो रमणी यथाक्रम पूर्व्वोक्त सप्तर्षिकी पत्नी हैं; यह लोकमाता हैं। सप्तर्षिके तपोबलसे ही त्रिभुवन रच्चित होता है। पूर्व्वकालमें, ब्रह्माने इन महर्षिगणको उत्पादनकर कहा, "हे पुत्रगण, प्रयत्न सहित नानारूपसे प्रजाकी सृष्टि करो!" फिर तपस्यामें कृतनिश्चय सप्तर्षिने, सर्व्व प्राणीकी मुक्तिके लिये महादेव जहां सर्व्वदा ही विराजमान हैं, ब्रह्माको प्रणाम करके उस चेत्रज्ञाधिष्ठित अविमुक्त चेत्रमें आगमनकर, अपने अपने नामानुसार सप्तलिङ्ग प्रतिष्ठा करके शिवके प्रति परम प्रगाढ़ भक्तियोगसे अतीव उग्र तपस्या की। शिवने उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उन लोगोंको प्राजापत्य पद प्रदान किया। काशीमें अत्रीश्वरादि लिङ्ग यत्न सहित देखनेपर, मनुष्य इस प्राजापत्यलोकमें उज्ज्वल तेजःसम्पन्न होकर वास करता है। गोकर्णेश्वर सरोवरके पश्चिम तीरमें अवस्थित अत्रीश्वर लिङ्ग अवलोकन करनेसे ब्रह्मतेज वृद्धि होती है। कर्कोटवापीके ईशानकोणमें उत्तम मरीचिका कुण्ड है; मनुष्य वहां भक्तिपूर्व्वक स्नान करनेसे सूर्य्यवत् दीप्ति पाता है। हे विप्र! वहां मरीचीश्वर नामक लिङ्ग प्रतिष्ठित है। इस लिङ्गके दर्शनसे मरीचिलोक प्राप्त होता है और वह पुरुषश्रेष्ठ, मरीचिमालीकी तरह कान्तिसम्पन्न होकर रहता है। पुलहेश्वर और पुलस्त्येश्वर शिवलिङ्ग स्वर्गद्वारके पश्चिम अवस्थित हैं; मनुष्य उनके अवलोकनसे प्राजापत्य लोकमें सम्मानित होकर वास करता है। हे विप्र! रमणीय हरिके भवनमें आङ्गिरसका शिवलिङ्ग दर्शन करनेसे, तेजःपूर्ण होकर इस प्राजापत्य लोकमें वास करता है। वरणानदीके रमणीय तीरस्थित वसिष्ठेश्वर और क्रत्वीश्वर दर्शन करनेसे इस प्राजाप्रत्य लोकमें वासप्राप्ति होती है। मङ्गलाभिलाषी व्यक्तिगण, वाराणसीके इन सब शिवलिङ्गकी सेवा करें, करनेसे यह सेवकोंको ऐहलौकिक पारलौकिक मनोवाञ्छा पूर्ण करते हैं। विष्णु-पारिषद्द्वयने कहा, महाभाग शिवशर्म्मन्! जिनके स्मरणमात्रसे गङ्गास्नानफल प्राप्त होता है, वही महापुण्यवती पतिव्रतपरायणा अरुन्धती सुन्दरी इस लोकमें अवस्थिता हैं। प्रभु नारायणदेव, इन अरुन्धतीके पतिव्रात्य धर्म्मसे परम परितुष्ट होकर अन्तःपुरचर दो तीन जन पवित्र व्यक्तिसे लक्ष्मीके सम्मुख इनकी कथा सदा आनन्दसे कीर्त्तन करते हैं। नारायण कहते हैं, कमले! पतिव्रताओंमें अरुन्धतीका जैसा निर्म्मल आशय है, हे भामिनि! अन्य किसी रमणीका कहीं भी उस प्रकारका पवित्र आशय नहीं है। प्रिये!

रूप, शील कौलीन्य, कलानैपुण्य, पतिशुश्रूषा, माधुर्य्य, गाम्भीर्य्य और गुरुजनके सन्तुष्ट करनेमें अरुन्धती जैसी हैं, वैसी और कहीं नहीं हैं। जो प्रसङ्गक्रमसे भी अरुन्धतीका नाम ग्रहण करें, जगतमें वह सब शुद्धबुद्धि सौभाग्यशालिनी रमणी धन्य हैं। हमारे भवनमें जब पतिव्रताओंकी बात उठती है, तब यह सती अरुन्धती ही सर्व्वप्रथम श्रेणी अलङ्कृत करती हैं। विष्णुपारिषद्द्वयने, इस तरह यह प्रमोदावह बातचीत करते करते सत्यपूर्ण ध्रुवलोकको देखा।

अष्टादश अध्याय समाप्त ॥१८॥

एकोनविंश अध्याय।

ध्रुवचरित्र, ध्रुवका गृहत्याग

शिवशर्म्मा बोले, हे साधुप्रवरद्वय! एकीभूत पदद्वय द्वारा अवस्थित, वातमयत्रिविधरज्जू-निहित कराङ्गुलि, यह कौन चञ्चल नयन भ्रमण करते हैं? यह तेजःसंवृत पुरुष त्रैलोक्यमण्डपके महास्तम्भ स्वरूप, तुलादण्ड द्वारा मानो यह अतुलनीय ज्योतिराशि नापते हैं; यह मानो आकाश विस्तृतिके परिमापक सूत्रधार हैं; अथवा यही गगनाङ्गनमें उत्थित त्रिविक्रमके चरणदण्ड हैं; किंवा यह गगन सरोवर के मध्यप्रोथित सारयूप (लट्टा) स्वरूप हैं। हे देवद्वय! यह कौन हैं;—अत्यन्त दया करके मुझसे यह कहिये। विमनारूढ़ विष्णुपारिषद्द्वय बसुकी यह वार्त्ता सुनके प्रणयवशतः ध्रुवका चिरस्थायी वृत्तान्त कीर्त्तन करने लगे, स्वायम्भुव मनुके उत्तानपाद नामक एक पुत्र थे। हे विप्र! उन राजाके दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें सुरुचिके गर्भसे ज्येष्ट उत्तम, और सुनीतिके गर्भसे कनिष्ठ ध्रुव हुए। एक दिन सभामें राजा उपविष्ट हैं, सुनीतिने, बालक ध्रुवको वेशभूषासे सज्जित करके राजसेवाके लिये राजाके समीप भेज दिया। विनयतत्पर ध्रुवने धात्रीपुत्रोंके साथ राजसभामें जा भूपति उत्तानपादको प्रणाम किया। उस समय सुनीतिपुत्र ध्रुव, उच्च सिंहासनस्थित पिता महाराजके क्रोड़में उत्तमको उपविष्ट देखकर बाल्यचापल्य प्रयुक्त हो आप भी आरोहण करनेके अभिलाषी हुए। सुरुचि ध्रुवको राजाके क्रोड़में आरोहण करनेका अभिलाषी देखकर बोलीं, अरे दुर्भगापुत्र! बालक! क्या तू निर्ब्बुद्धिता प्रयुक्त हो राजाके क्रोड़में आरोहण करनेकी इच्छा करता है? रे अभागिनीगर्भसम्भूत! इस सिंहासनके ऊपर बैठनेका पुण्य तूने नहीं किया है। यदि कुछ पुण्य किया होता, तो अभागिनीके उदरसे क्यों जन्म लेता? इसी अनुमान द्वारा अपने अल्प पुण्यका विषय समझ देख। राजकुमार होकर भी हमारे गर्भको

तूने अलङ्कृत नहीं किया। इस उत्तमगर्भसम्भूत सर्वोत्तम उत्तमको देख, धरापतिके जानूपर बैठकर किस प्रकार आदर गौरवसे वर्द्धित होता है। इस अत्युच्च राजसिंहासनपर बैठनेकी यदि इच्छा थी, तो सुरुचिके सुशोभन गर्भको परित्यागकर गर्भमें वास क्यों किया? राजसभाके मध्य बालकध्रुवको, सुरुचि इसी प्रकार अतीव भर्त्सना करने लगीं। ध्रुव नयनविगलित जलधारा पान करते करते धैर्य्यवशतः कुछ भी न बोले। महिषी सुरुचिके सौभाग्यगौरवनियन्त्रित वह राजा भी उचितानुचित कुछ भी न बोले। शिशु ध्रुवने, सभादर्शन परित्यागपूर्व्वक धैर्य्यवोचित चेष्टा द्वारा शोक अप्रकाश रखकर राजाको प्रणामपूर्व्वक स्वगृहको गये। सुनीति, नीतिसम्पन्न बालक ध्रुवको देखते ही उनकी मुखश्रीसे समझ गईं, कि ध्रुव बहुत अपमानित हुए हैं। सुनीतिने सत्वर पासमें जाकर बारंबार ध्रुवका मस्तकाघ्राण करके मानो किञ्चितम्लानभावापन्न ध्रुवका शान्तिपूर्व्वक आलिङ्गन किया। तदनन्तर, ध्रुव, जननी सुनीतिको अन्तःपुरमें निर्ज्जनमें देख बहुबार दीर्घ उष्ण निश्वास परित्यागपूर्व्वक जननीके सम्मुख रोदन करने लगे। माता सुनीतिने, अश्रुपूर्णनयनसे बालक ध्रुवकी सान्त्वना करके और कोमल हस्तसे कोमल वसनाञ्चलसे मुख पोंछकर उनसे पूछा, कहो रोते क्यों हो? शिशु! राजाके रहते किसने तुम्हारा अपमान किया है? अनन्तर, ध्रुवने जलसे कुल्ला करके और ताम्बूल ग्रहण करके जननीके अनिर्ब्बन्ध पूछनेपर उनसे कहा, "जननि! मैं तुमसे पूछता हूं मुझे ठीक उत्तर दो; तुम और सुरुचि दोनो ही महाराजकी भार्य्या हो, भार्य्यात्व तुम्हारा दोनोका समान है, तब सुरुचि राजाकी प्यारी क्यों हैं? और मा! तुम राजाकी अप्रिय क्यों हो? उत्तम् और मैं दोनो राजकुमार हैं, कुमारत्व हमलोगोंका उभयका ही समान है, तथापि सुरुचिगर्भ सम्भव होकर उत्तम, उत्कृष्ट क्यों हुआ? और मैं ही अपकृष्ट क्यों हुआ? तुम मन्दभागिनी क्यों हुईं? और सुरुचि सुगर्भा क्यों हुई? राजाका आसन उत्तम हीके योग्य क्यों है? और हमारे योग्य क्यों नहीं है? हमारा पुण्य अल्प क्यों हुआ? और उत्तमका पुण्य उत्तम किस प्रकार हुआ? राजनीतिवित्प्रवरा सुनीति, बालक ध्रुवके इस प्रकार नीतियुक्त वाक्य श्रवणानन्तर धीरे धीरे किञ्चित् दीर्घश्वास परित्यागपूर्व्वक बालककी कोपशान्तिके लिये सापत्न्य रोष मनमें न लाकर स्वाभाविक मधुर वाक्यसे कहने लगीं, "मेरे सुबुद्धि! मैं विशुद्ध अन्तःकरणसे तुमसे सब बातें कहती हूं। जो हुआ है, उससे अपमान मनमें न करना। सुरुचिने जो कहा है, वह समस्त सत्य है, मिथ्या नहीं। सुरुचि,

राजाकी महिषी हैं; रानियोंमें सुरुचि ही राजाकी प्यारी हैं। बेटा! सुरुचिने जन्मान्तरमें जो असीम पुण्य उपार्ज्जन किया है, उसीकी प्रबलतासे राजा उसके प्रति अतीव सुरुचिसम्पन्न हैं। मेरे सदृश मन्द-भाग्यगण, राजाकी सामान्य रमणीगणमें अवस्थित हैं। 'राजपत्नी' कहकर केवल उन लोगोंकी ख्याति है। राजाकी रुचि इन सब रमणियोंपर नहीं होती। उत्तमने और बहु पुण्यपुञ्जके फलसे उस पुण्यवती माताके उत्तम गर्भमें वास किया है; अतएव वही राजसिंहासनके योग्य है। चन्द्रतुल्य आतपत्र, शुभ्र चामरद्वय, उच्च राजसिंहासन, मदमत्त कुञ्जरगण, शीघ्रगामी अश्वसमूह, आधिव्याधिविवर्ज्जित जीवन, निष्कण्टक उत्तम राज्य, श्रेष्ठता, हरिहर पूजा, विपुल कला-ज्ञान अध्ययन, अजेयता, षड़्रिपुविजय, स्वभावतः सात्त्विक बुद्धि, कारुण्यपूर्ण दृष्टि, मधुर वाक्य, कार्य्यमें अनालस्य, गुरुजनमें नम्रता, सर्व्वत्र शौचज्ञान, सदा परोपकार, तेजस्विनी मनोवृत्ति, सतत अनृतभाषिता, सभाप्राङ्गणमे पाण्डित्य, रणाङ्गनमें प्रागल्भ्य, बन्धुगणके प्रति सरलता, क्रयविक्रयमें काठिन्य, रमणीके सहित कोमलताका व्यवहार, प्रजावात्सल्य, ब्राह्मणगणसे नित्य शौरुषा, सदाचार वृत्ति-अवलम्बन गंगातीरमें वास, तीर्थमें या रणमें मृत्यु, याचकोंके प्रति विमुख न होना, विशेषतः शत्रुगणके समीपसे युद्धमें न भागना, परिजनगणके सहित भोग, दानद्वारा दिवसका साफल्य सम्पादन, सर्व्वदा विद्यामें आसक्ति, सदा माता पिताकी उपासना, सदा यशका सञ्चय, प्रति दिन धर्म्मोपार्ज्जन, स्वर्ग और मुक्तिकी सिद्धि, निरन्तर सदाचारानुष्ठान, सदा सत्सङ्ग, पितृबन्धु लोगोंके सहित मित्रता, इतिहासपुराण श्रवणमें सदा उत्साह, विपद्में भी परम धैर्य्य, सम्पत्ति समागममें स्थिरता, वाग्-विलासमें गाम्भीर्य्य, पात्रपाणि याचक लोगोंके प्रति वदान्यता और तपस्या, यम और नियम द्वारा ही केवल शारीरिक कृशता,—पूर्व्वार्ज्जित तपस्यारूप तरुगणके यही समस्त फल हैं। अतएव हे महामते! तुम्हारे और मेरे अधिक तपस्या न करनेकी वजहसे ही हम दोनों राजसान्निध्य लाभकरनेपर भी राजलक्ष्मीके भागी नहीं हुए। अतएव मान और अपमानका हेतु केवल अपना अपना कर्म्म है। विधाता भी स्वकृत कर्म्म-फलको अन्य नहीं कर सकते। अतएव, पुत्र! तुम शोक मत करो, भाग्य-फलसे जो हो, वही अच्छा समझो।"

सुनीतिके इस प्रकार सुनीतिसम्पन्न वाक्य श्रवण करके सुनीतिपुत्र ध्रुव, प्रत्युत्तरमें कहने लगे,—जननि! सुनीति! मेरी बात तुम अव्यग्र भावसे श्रवण करो। हे कष्टभागिनि! बालक जानकर मेरी अवज्ञा मत करना। मा! यदि मैंने अन्तरान्त पवित्र मनुवंशमें जन्म ग्रहण किया है, यदिमैं उत्तानपाद राजाका औरसजात और

तुम्हारा गर्भसम्भव हूं और तपस्या यदि सर्व्वसम्पत्तिका कारण हो, तो निश्चय जानो, जो दूसरोंके लिये दुर्लभ है, वही वही पद हमलोगोंको प्राप्त हुए हैं। मा मोहके वश-वर्त्तिनी न होकर तपस्या करने मातकी अनुमति प्रदान करो और आशीर्व्वाद द्वारा अभिनन्दन करो, यह एक मात्र सहायता तुम दो। सुनीति, अपने गर्भसम्भूत कुमारको महावीर्य्य और महोत्साहसम्पन्न जानकर भी कहने लगीं,—स्तन्यपायिन् शिशु पुत्र! नवम वर्ष वयःक्रम तुम्हारा आज भी पूरा नहीं हुआ है, तुम्हें इस कार्य्यकी अनुमति मैं दे तो नहीं सकती, तथापि कहतीं हूं, कि सपत्नीवचनरूप भल्लास्त्र द्वारा विदीर्ण मेरे विशाल हृदयमें भी तुम्हारी वाष्प समूह जलराशि क्षणकाल भी तो नहीं रहती, क्या करूं। शिशु! वही जलराशि मेरे नयनपथ द्वारा क्षरित होती है और दुःखावह जलपूर्ण नदी समूह उत्पादन करनेको प्रवृत्त हुआ है। बेटा! तुम मेरे एक ही पुत्र हो; तुम मेरे जीवनके एक ही आधार हो; तुम मुझ अन्धीकी लकड़ी हो, तुम्हारे मुखकी ओर देखकर ही मैं जीती हूं। अभीष्ट देवता लोगोंके निकट प्रार्थना करके कितने कष्टसे तुमको पाया है। बाबा! तुम्हारा मुख-चन्द्र हमारे जिस समय नयनगोचर होता है, उस समय हमारा हृदयरूप क्षीर समुद्र आनन्ददुग्धसे परिपूर्ण होकर स्तनद्वयरूप वेलाभूमिको अतिक्रम करता है। तुम्हारे अङ्गसङ्गजनित सुखसन्दोहमें शीतल होकर मैं रोमाञ्चरूप वस्त्र ओढ़कर उत्तम शय्यामें सुखसे शयन करती हूं। तत्पश्चात् हे चन्द्रमुख! आचमन और ताम्बूल ग्रहण करके, तुम्हारे वदनके उष्ठाधररूप क्षीरसमुद्रसे समुत्थित अमृत-पान करके भी मेरी आशा नहीं मिटती। तुम्हारा मृदुसम्भाषण जब मेरे कानोंमें प्रविष्ट होता है, सपत्नीवाक्यव्यथा तभी अवगत होता है। बेटा! तुम्हारे अनेक क्षण निद्रित होनेसे मैं सोचती हूं, कि सूर्य्योदयके पद्मकी तरह मेरा ध्रुव कब प्रबुद्ध होगा। वत्स! तुम जब क्रीड़ासङ्गी बालकोंके साथ खेलकर घर आते हो तब हमारे स्तनद्वय तुम्हें अमूल्य अर्घ्य प्रदान करनेके लिये उन्मुख हो उठते हैं। जब तुम महलसे बाहर जाते हो, तब तुम्हारे पद्मरेखाचिह्नित पदचिन्ह ही, हमारी गमनाभिलाषी प्राणवायुके अवलम्बन होते हैं। पुत्र! जब जब तुम तीन चार कदम बाहर जाते हो, मेरा प्राण भी तब, तब कण्ठागत हो रहता है। पुत्र! सुधा वर्षी मेघके तुल्य तुम्हारे बाहर विलम्ब करनेसे, मेरा मानस-पक्षी जानेके लिये अति आश्चर्य भावसे लरा करता है। इस समय तुम्हारे तपस्याको जानेसे मेरा अति सन्तप्त भावसे, कण्ठ·कानमप्रान्तमें तपस्या करता हुआ अवस्थान करे। ध्रुवने, इस प्रकार जननीकी

अनुज्ञा प्राप्तकर उनके चरणकमलद्वयको, अपने केशपाशरूप पद्म द्वारा क्षण काल वेष्टितकर गमन किया। तब सुनीतिने भी दृष्टिरूप इन्दीवरमाल्य धैर्य्यसूत्र द्वारा गूंथकर ध्रुवको उपहार दिया। माता सुनीतिने, पथमें उन्हें रक्षा करनेके लिये दूसरेके लिये अनिवार्य्यवेग-सम्पन्न शताधिक अन्तरसे आशीर्व्वाद प्रेरण किये। महापराक्रम बालकने अपने महलसे बाहर होकर क्रमसे बनमें प्रवेश किया, अनुकूल वायु उनकी पथप्रदर्शक हुई। पवनविकम्पित तरुशाखाके प्रसारणकुलीवन मानो उनको सप्रेम आह्वान करते हैं। ध्रुव बनमें प्रविष्ट हुये। जिन ध्रुवके माता ही देवता हैं, वह केवल राजपथ पहचानते थे। राजनन्दन अरण्य-पथ नहीं जानते थे। इसीसे क्षणकाल उन्होंने चिन्ता की। तत्पश्चात् ध्रुवने जैसेही नयन उन्मीलनपूर्व्वक सामने देखा, वैसे ही अरण्यके बीचमें अतर्कितगति सप्तर्षियोंको देख पाया। असहाय अनभिज्ञ व्यक्तिका भाग्य ही सहायकारी है; महावनमें, संग्राममें और गृहमें भाग्य ही सर्व्व विषय-का कारण है। कहां बालक राजपुत्र और कहां वह गहन बन; हे भवितव्यते! बल-पूर्व्वक तुम्हीं सबको आत्मसात् करती हो, तुमको नमस्कार है। जिसका जहां शुभ वा अशुभ होगा, भवितव्यता पाश आकर्षण करके उसको उस जगह अर्पण करती है। मनुष्य अपने बुद्धिबलसे एक तरह करने जाता है, भगवती भवतव्यताको सहायतासे विधि उसको अन्य रूपसे परिणत करते हैं। वयःक्रम, विचित्र कार्य्य-सम्पादिका शक्ति, बल और उद्योग, पुरुषका हित नहीं कर सकती, एक प्राक्तन कर्म्म ही इसका मूल है! अनन्तर मानो अपने भाग्य सूत्रजाल कर्त्तृक आकृष्ट होकर उपनीत सूर्य्योंसे अति तेजस्वी सप्तर्षिको देखकर ध्रुव आनन्दित हुए। उन लोगोंका प्रशस्त ललाट तिलकाङ्कित था, उङ्गुलीमें कुशोपग्रह थि, वह सब उत्तम यज्ञ-सूत्रसे अलङ्कृत और कृष्णाजिन आसनपर उपविष्ट थे। उनके हाथमें अक्षसूत्र, नयन युगल किञ्चित किञ्चित निमीलित हैं, उत्तम धौत सूक्ष्म काषाय वस्त्र और उत्तरीय उनके अङ्गमें शोभाय मान था! ओह! विप-न्मग्न प्रजाकुलका उद्धार करनेके लिये सप्तसागर ही मानो असमयमें एकत्र मिलित हुए थे! ध्रुव उन महाभाग सप्तर्षिके निकट उपस्थित होकर प्रणाम-पूर्व्वक प्रणतकन्धरसे और कृताञ्जलिपुटसे यह मनोहर वाक्य कहने लगी, हे मुनि-श्रेष्ठगण! आपलोग अवगत हूजिये, मैं उत्तानपाद राजाके औरससे और सुनीतिके गर्भसे उत्पन्न हूं, मेरा नाम ध्रुव है। मैं निर्विसन्नहृदयसे आप लोगोंके चरणकमल द्वारा सनाथीकृत इस बनमें आया हूं, मैं इस आचारका प्रायः कुछ भी

नहीं जानता। राजसम्पत्तिमें ही मन इतने दिन निविष्ट था। सप्तर्षिने उन महातेजा स्वभाव-मधुराकृति अपूर्व्वनीतिज्ञान-विभूषित मृदुगम्भीर-भाषी बालकको देखकर निकटमें उपवेशन कराकर अत्यन्त विस्मित भावसे उनसे पूछा, "अहे विशालाच बालक! महाराज-कुमार! हमलोग विचार करनेपर भी नहीं समझते, कि तुम्हारे निर्व्वेदका क्या कारण है; अतएव तुम्हीं उसे कहो। अर्थचिन्ता अबतक तुम्हारे मनमें नहीं हुई है; माता सुखमें हैं, अपमानकी सम्भावना कहां? शरीर भी नीरोग है; तब निर्व्वेदका क्या कारण है? अभिलषित वस्तुकी अप्राप्ति वशतः मनुष्योंमें वैराग्य होता है सही, किन्तु तुम सप्तद्वीपाधिपति राजाके कुमार हो; तुम्हारे पक्षमें इस प्रकार कैसे होगा? सबकी प्रकृति स्वभावतः भिन्न भिन्न है; अतएव, इस स्थानमें क्या युवा, क्या वृद्ध, क्या बालक किसीका भी मनोगत भाव जाना नहीं जाता।" मनोरथ-सम्पन्न शिशु ध्रुव, सप्तर्षियोंके इस प्रकार सहज-प्रेमपूर्ण वाक्य श्रवण करके कहने लगे, हे मुनिश्रेष्ठगण! जननीने, राजसेवाके लिये मुझे (राजसभामें) भेज दिया, तत्पश्चात् मेरे राजाके क्रोड़में आरोहण करनेका अभिलाषी होनेपर, विमाता सुरुचिने, मुझे भर्त्सना की। मुझे और मेरी माताको धिक्कार देकर, अपने पुत्र उत्तमका उत्तमत्व प्रतिपादन करती हुई अपनी प्रशंसा करने लगीं, यही मेरे निर्वेदका कारण है। शिशुकी यह बात सुनकर वह ऋषिगण, परस्पर परस्परके प्रति अवलोकन करके क्षत्रियत्वकी कथा कहने लगे, "ओह! क्षत्रियके बालकमें भी इतना तेज है!" अहे! हमलोग तुम्हारे लिये क्या करें; तुम्हारी अभिलाषा क्या है? हमलोगोंको वह विदित हो, तुम उसी बातको हमलोगोंके कर्णगोचर करो। हे मुनिगण! हमारे भ्राता उत्तमोत्तम उत्तम, पितृदत्त प्रसिद्ध उत्तम राजसिंहासनपर आरोहण करें! हे सुव्रतगण! मैं आप लोगोंके निकट यही साहाय्य प्रार्थना करता हूं, कि वक्ष्यमाण विषयका आपलोग उपाय कह दें, मैं बालक हूं, इसके लिये मैं तो प्रायः कुछ भी नहीं जानता। और राजोंने जिसको भोग नहीं किया, अन्य पदसे जो वह उन्नत (श्रेष्ठ) है, इन्द्रादि देवगणको भी जो दुर्लभ है, वही दुरासद पद किस प्रकार लाभ किया जा सकता है? मैं पिताके प्रदत्तपदकी आकांक्षा नहीं करता, मैं निज भुजबलार्ज्जित उस पदकी आकांक्षा करता हूं; जो पिताके भी मनोरथातीत है। जो लोग पिताकी सम्पत्ति भोग करते हैं, वह लोग प्रायशः यशस्वी नहीं हैं; परन्तु पिताकी अपेक्षा अधिक सामर्थ्यका परिचय जिनसे पाया जाता है, वही नरोत्तम हैं। पिताका उपार्ज्जित विख्यात यश अथवा धन

जो लोग विनष्ट करते हैं,उन दुर्वृत्ति लोगोंका मरण ही वाञ्छनीय है। मरीचादि मुनिगणने, ध्रुवके यह सुनीतिपूर्ण वाक्य श्रवण कर, उन्हें इस प्रकार यथार्थ उत्तर दिया था। प्रथमतः मरीचि बोले, अहे बालक! तुमने जो जो पूछा, मैं उसीके अनुसार कहता हूं, मैं मिथ्या नहीं कहता; नारायणकी चरणाराधना न करनेसे पद किस प्रकार पाओगे? अत्रि बोले, गोविन्दके चरणकमलका रजोमधु आस्वादन न करनेसे, मनोरथ-पथके अतीत स्फीत पद कोई भी प्राप्तकर नहीं सकता। अङ्गिरा बोले, जो व्यक्ति, कमलापतिके कमनीय चरणकमल-युगलका ध्यान करते हैं, सर्व्वसम्पत्तिपद ही उनसे अदूर हैं। पुलस्त्य बोले, ध्रुव! जिनके स्मरणमात्रसे महापातकसमूह भी विनाशको प्राप्त होता है वह विष्णु सभी दे सकते हैं। पुलह बोले, प्राज्ञगण जिनको प्रकृति पुरुषके परवर्ती परम ब्रह्म कहते हैं,जिनकी माया द्वारा ही विश्वब्रह्माण्ड परिव्याप्त है, वह अच्युत ही सब दान कर सकते हैं। क्रतु बोले, जो यज्ञपुरुष, जगतके अन्तरात्मा और सर्व्वव्यापी हैं, वह जनार्द्दन प्रसन्न होनेसे क्या नहीं दे सकते? वशिष्ठ बोले, हे राजपुत्र! जिनकी भ्रूभङ्गीमात्रसे अष्टसिद्धि प्राप्त होती हैं, उन्हीं हृषीकेशकी आराधना करनेसे मुक्ति भी अदूरवर्त्तिनी है। ध्रुव बोले, हे मुनीश्वरगण! आप लोगोंने विष्णुकी आराधना सम्बन्धमें यथार्थ आदेश किया है; परन्तु किस प्रकार उन भगवानकी आराधना करना होगी, उस विधिका भी उपदेश कीजिये। मुनिगण बोले, अवस्थान, गमन, स्वप्न, जागरण, शयन और उपवेशन सभी अवस्थामें सर्व्वदा नारायणका जप करना। चतुर्भुज विष्णुका ध्यान करता हुआ वासुदेवात्मक द्वादश मन्त्र द्वारा विष्णुका जप करके कौन सिद्धिप्राप्त नहीं हुआ? पुष्प-सन्निभ, पीत-वसन-परिधान अच्युतको चणकाल सर्व्वस्वरूपमें बोध कर सकनेसे जगतमें किसकी सिद्धि नहीं हुई? वासुदेव-जप करनेसे बहुपुत्र, कलत्र, बहुमित्र, राज्य, स्वर्ग और मुक्ति—निसन्देह यह सब पाये जाते हैं। विघ्न और दारुण यमदूत लोग वासुदेव-जपासक्त पापी लोगोंको भी स्पर्श नहीं कर सकते। भविष्यतमें महा समृद्धिसम्पन्न, तुम्हारे पितामह वैष्णव मनुने भी राज्याभिलाषी होकर इसी महामन्त्रकी उपासना की थी। हे सत्तम! तुम भी यही मन्त्र अवलम्बनपूर्व्वक वासुदेवपरायण हो, शीघ्र ही इच्छानुरूप सम्पत्तिको प्राप्त होगी। सब महात्मा मुनीश्वर लोग यह कहकर अन्तर्हित हुए। ध्रुवने भी विष्णुमें समर्पित-हृदय होकर तपस्याके लिये गमन किया।

एकोनविंश अध्याय समाप्त॥ १९॥

विंश अध्याय।

ध्रुवकी तपस्या और विष्णुका आविर्भाव।

विष्णुपारिषद्द्वयने कहा, हे द्विज! उस वनसे निर्गत होकर उत्तानपादनन्दनने यमुनातीरके महत् रमणीय मधुवनमें गमन किया। पवित्र मधुवन, भगवान् कनाई-नका आदि स्थान है; पापिष्ठदेही भी वहां जानेसे निश्चित ही निष्पाप होते हैं। ध्रुवने वासुदेवाख्य निरामय परमब्रह्म जप करते करते ध्याननिश्चललोचनसे सब पदार्थ-को तन्मय (विष्णुमय) देखा। उन्होंने देखा, कुल दिङ्मण्डलमें हरि हैं; सूर्य्यकिरण-जालमें हरि हैं; हरि, वनमें शृगाल, मृग, सिंहादि स्वरूपमें अवस्थित हैं। भगवान् हरि, जलमें मत्स्य कुर्म्मादि रूपमें अवस्थित हैं। हरि, राजाओंकी बुद्धिमें अवस्थित हैं। हरि, पातालमें अनन्तरूपसे और गगनमें अनन्त नामसे विराजमान हैं। हरि, एक होकर भी अनन्त रूपभेदमें अनन्तत्वको प्राप्त हुए हैं। देवता प्रभृतिमें वास करते हैं, इसलिये वह वासुदेव हैं, देवता प्रभृति सब उनमें वास करते हैं, इसलिये वह वासुदेव हैं, और वासना-वशसे अर्थात् अविद्या सङ्गमें सर्व्वत्र देवन अर्थात् क्रीड़ा करते हैं, इसलिये उनका नाम वासुदेव है। इन सर्व्वव्यापक भग-वानका नाम विष्णु है, विषधातुसे अर्थ व्याप्ति है, इनके विष्णु नामसे विषधातुका अर्थ सफल हुआ है। वही सर्व्वत्रस्थित परमेश्वर, सर्व्व-इन्द्रियके ईश्वरत्व प्रयुक्त 'हृषीकेश' हुए हैं। महाप्रलयमें भी उनके भक्तगण च्युत नहीं होते, इसलिये अखिल लोकमें यह एक सर्व्वग अव्यय पुरुष अच्युत कहे जाते हैं। वह इस चराचर निखिल विश्वको आत्मलीलाक्रमसे स्वरूप-सम्पत्ति द्वारा भरण करते हैं, इसलिये वह जगत्में 'विश्वम्भर' हैं। इस हेतु नियमतः पुण्डरीकाक्ष ही केवल द्रष्टव्य हैं, और कोई नहीं, अतएव विष्णुपदके सिवा ध्रुवकी दोनो आंखोंमें और कुछ भी निप-तित नहीं होता था। उनके कान भी, मुकुन्द, गोविन्द शब्दके सिवा और हे दामोदर! हे चतुर्भुज! इस प्रकार शब्दके अतिरिक्त और कोई शब्द ही नहीं ग्रहण करते थे। उनके शङ्खचक्र तिलकाङ्कित दोनो हाथ, गोविन्दचरणपूजाका प्रयोज-नीय कर्म्म और गोविन्दके प्रिय कर्म्मके सिवा और कोई काम नहीं करते थे। ध्रुवका चित्त दूसरी सब चिन्ता त्याग करके अप्रतिद्वन्द्विभावसे हरिके चरणद्वयकी चिन्ता करते करते क्रमसे निश्चलत्वको प्राप्त हुआ। विपुलतपा उन ध्रुवके विष्णुरक्षित चरणद्वय विष्णुमन्दिर प्राङ्गण परित्याग करके अन्यत्र विचरण नहीं करते थे। मौनावलम्बी महासार तपोनिष्ठ ध्रुवने अपने वाक्यको हरिगुणमें आसक्त किया। ध्रुवकी रसना, केवल कमलाकान्तका नामा-मृतरस पान करती, और रसमें उसकी स्पृहा

नहीं थी। उनकी घ्राणेन्द्रिय, केवल पद्मामोदप्रमोदित, श्रीविष्णु पदयुगल आघ्राण करती, दूसरा गन्ध घ्राण नहीं करती थी; क्योंकि, उनकी घ्राणेन्द्रिय, हरिपदकमलगन्धसे परिपूर्ण थी। भूपतिपुत्र ध्रुवकी त्वगिन्द्रियने, विष्णुप्रतिमाके पदद्वय स्पर्शकरनेसे ही यावतीय सुखस्पर्श वस्तुका स्पर्शसुख प्राप्त किया था। ध्रुवकी इन्द्रियगण, परम-धार दामोदरसे अपने अपने विषयके आह्लादिका आश्रय पाकर कृतार्थ हुईं। त्रिभुवनोद्दीपक ध्रुवतपस्यारवि उदित होनेसे चन्द्र, सूर्य्य, अग्नि और ग्रहनक्षत्रादिका समग्र तेज विलुप्त हुआ। इन्द्र, चन्द्र, वायु, वरुण, यम, कुवेर, हुताशन और नैऋतीश्वर अपने अपने पदके लिये शङ्कित हुए। ध्रुव, पीछे उनका अधिकार ग्रहण करेंगे, इस चिन्ताके प्राबल्यसे वसुप्रमुख अन्यान्य विमानचारी देवगण भी सातिशय भीत हुए। ध्रुव, भूतलमें जहां जहां पदक्षेप करते, पृथिवी, उसी उसी स्थानमें ही उनकी भाराक्रान्ता होकर नत होती। ओः! उनके भयसे ही उनका अङ्ग-सङ्गी जलराशि जाड्य परित्याग करके प्रशस्त-रस-सम्पन्न हुआ। और अन्यत्रस्थित जल पैरके बराबर हो गया। प्रथित रूपसम्पन्न जितना तेज है, अर्थात् तेजस्वी जगत्में विद्यमान है, तपस्तेजः प्रभावसे, ध्रुवको वह सब दिखाई दिया। क्या आश्चर्य है! जहां वायुका स्पर्श नहीं होता, ऐसे किसी भी दूरदेशका स्पर्श भी वह आत्मत्वगिन्द्रिय द्वारा सदा अनुभव कर सके। ध्रुवकी आराधनासे कृतसङ्कल्प होकर (ध्रुव जब चाहते) शब्द-गुणसम्पन्न आकाशका अशेष शब्दसमूह, उनके कर्णगोचर होता। ध्रुवने प्रतिदिन पञ्चभूतसे आराधित होकर भी गोविन्दमें चित्त. अर्पणपूर्वक तपस्याको ही परमपदार्थ माना। वह राजनन्दन, कौस्तुभ-शोभितवक्षस्थल, पीत-कौशेयवसन-परिधान गोविन्दके ध्यान प्रभावसे, निखिल विश्व ब्रह्माण्डको तेजोमय अवलोकन करने लगे। ध्रुवकी तपस्या देखकर, सभय इन्द्र यह प्रबल चिन्ता करने लगे, "ध्रुव, यदि हमारे पदकी आकाङ्क्षा करे, तो निश्चय ही हरण करेगा, अप्सरागण, संयमियोंका संयम भङ्ग कर सकती हैं सही, किन्तु युवागणके प्रति ही उनका प्रभुत्व है, बालकपर तो उनका प्रभुत्व नहीं है, मैं क्या करूं! तपस्वियोंके तपोभङ्गमें काम क्रोध दो व्यक्ति मेरे साहाय्यकारी हैं; किन्तु यह ध्रुव बालक है, इसपर तो वह प्रभुत्व कर नहीं सकेंगे। इस बालकपर ममता प्रकाश कर सकें, ऐसा उपाय मेरे पास एकमात्र है। बालक ध्रुवके भयके लिये भीषणाकृति भूतश्रेणी वहां भेज दूं। भूतसे भय पाकर, बालकपनसे वह ध्रुव, निश्चय ही तपस्या त्याग करेगा।" इन्द्रने इस प्रकार निश्चय करके ध्रुवके पास भूतसमूह भेजा। एक भूतका सर्व्वाङ्ग भालकी तरह,

गरहन ऊंटकी तरह लम्बी और दन्तपंक्ति दिखकर डर लगता था, वह उन बालकके प्रति दौड़ा। व्याघ्रके समान भीषणानन, हाथीके समान उच्चदेह-सम्पन्न एक भूत विकटानन पसारकर वारंवार गर्ज्जन करते करते उन बालककी ओर दौड़ा। कोई विकटदंष्ट्रा-सम्पन्न भूत कदर्य्यमांस भोजन करता हुआ सक्रोध अवलोकनपूर्व्वक तर्ज्जन गर्ज्जन करके ध्रुवके प्रति दौड़ा। कोई भूत, महावृषभरूपी होकर अति तीक्ष्णशृंगके अगले भाग द्वारा उच्च तटभूमि विदीर्ण करता हुआ और खुरके अगले भाग द्वारा भूतल विशीर्ण करता करता ध्रुवको देख गर्ज्जन करने लगा। कोई भूत, फणा-विस्तार-भीषण सांपका आकार धारण करके अति चञ्चल दोनो जीभ निकाल निकालकर उनके सामने तेज प्रकाश करने लगा। कोई भूत, महिषाकृति होकर सींगके अगले भाग द्वारा पर्व्वत-समूह विक्षिप्त करता हुआ भूतलमें लाङ्गल-ताड़ना और निश्वास परित्याग करता करता वेगसे ध्रुवके निकटवर्त्ती हुआ। दावानलदग्ध खजूरके वृक्षकी तरह उरुद्वय-सम्पन्न कोई भूत, मुंह फैलाकर उन्हें भय दिखाने लगा। एक भूतका केशपाश मेघसे संश्लिष्ट होता था, पिङ्गलवर्ण नयन दोनो कोटर-निमग्न, और उदर सुदीर्घ और कृश वह भी ध्रुवको भय दिखाने लगा। दक्षिण हाथमें कृपाण, बाम हाथमें नरकपाल सम्मुख कोई भूत, प्रचण्ड सिंहनाद करता हुआ उन बालकके प्रति दौड़ा। कोई भूत, किलकिला शब्द करता करता विशालशूल ग्रहणकर, दण्डधर कालकी तरह उनके सामने आया। कोई भूत, अन्धकारका अभिसारमन्दिर, अमनकन्दरसदृश विपुल वदन-कुहर पसारकर उनके पास आया। कोई भूत उल्लूका रूप धर हृतकम्प-जनक अति दारुण फुफकार शब्द द्वारा बालक ध्रुवको भय दिखाने लगा। कोई यक्षिणी किसीका रोता हुआ बालक लाकर उदरसे उसका रुधिर पान करती, शृगालकी तरह उसकी अस्थि खाने लगी और कहने लगी, मैं इस समय प्यासी हुई हूं, ध्रुव! इस बालकका रुधिर जिस तरह पी रही हूं, इस अस्थिको चबाकर तुम्हारा रक्त भी इसी तरह पिऊंगी। किसी यक्षिणीने, तृणदारु लाकर चारो ओर विका दावानल प्रज्ज्वालित किया और वात्या द्वारा उसको वह विशेषरूपसे बढ़ाने लगी। किसी यक्षिणीने, बेताली रूप अवलम्बन करके गिरितरुश्रेणी तोड़कर ध्रुवको अतीव विकम्पित करनेके लिये गगन मार्गको घेर लिया। अपर यक्षिणी, सुनीतिरूप अवलम्बन कर, दूर हीसे ध्रुवको देख अति दुःखार्त्ताकी तरह छातीमें कराघात करती हुई वारंवार रोने लगी और अति कारुण्यपूर्ण वात्सल्यभाव ऐसा प्रकाश

करती हुई, बहुत मायामय चटपटी बात कहने लगी. "शरणागतवत्सल ! वत्स ! ध्रुव ! हाय तुम्हीं मेरे एक मात्र रक्षक हो, हाय मृत्यु मुझे मारनेकी अभिलाषी हुई है, मैं मरती हूं, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। तुमको देखनेके लिये नितान्त कातर हो मैंने ग्राम ग्राम, नगर नगर पथ पथ, बन बन, आश्रम आश्रम, पर्व्वत पर्व्वत भ्रमण किया है। अरे बालक ध्रुव ! जिस दिनसे तू तपस्याके लिये बहिर्गत हुआ है, मैं भी तुझे देखनेके लिये उसी दिनसे ही बाहर हुई हूं। बालक ! तू जिस तरह सपत्नीके जिन जिन दुर्व्वाक्योंसे पीड़ित हुआ है, मैं भी उसके वचनानलसे उसी प्रकार अतिशय व्यथित हुई हूं। इस समय न मैं सोती हूं, न जागती हूं, न भोजन करती हूं, न पानी पीती हूं; मैं इस समय तेरे विरहकी योगिनीकी तरह केवल तेरी ही चिन्ता करती हूं। नयनमें निद्रा भी नहीं है, यदि निद्रा आवे, तो मैं अभागिनि, अपना सर्व्वप्रकार आनन्ददायक तेरा मुंह स्वप्नमें भी देख सकूं। बेटा ! तुम्हारी विरहकातरा मैं तापपरिहारकी अभिलाषिणी होकर तेरे सुखके समान जान उदीयमान चन्द्रको भी अवलोकन नहीं करती। कोकिलकी काकिली रव, तुम्हारे ही अलापके तुल्य है, यह जानकर अलकगुच्छसे कर्णकुहर आवृत कर रखती हूं, कि कोकिलका शब्द न सुनूं। ध्रुव ! अतिमात्र सन्तप्त होकर किसी स्थानमें विश्राम करने बैठकर भी तेरे अङ्गस्पर्शकी तरह मधुर जानकर मैं मलयानिलका सेवन नहीं करती। ध्रुव ! मैंने राजपत्नी होकर भी तेरे लिये कौन देश, कौन नदी. और कौन पर्व्वत पदव्रजसे अतिक्रम नहीं किया है? मैं सब स्थानको ध्रुवहीन देखकर अन्ध हो गई हूं, पुत्र ! इस समय तू ही मेरी अन्धेकी लकड़ी होकर रक्षा कर। हे नरश्रेष्ठ ! कहां तुम्हारा वह सुकोमल अङ्ग और कहां कठिनाङ्ग पुरुषगणासाध्य यह कठोर तपस्या ! वत्स ! इस पापनिवर्त्तक तपस्याके प्रभावसे तुम राजनन्दन होनेकी अपेक्षा अधिक और क्या क्या पाओगे? बालक ! इस वयसमें तू बालोचित क्रीड़नक ले दूसरे समवयस्क शिशुगणके साथ दिन रात खेलता। फिर कैशोर वयःक्रम प्राप्त होनेपर अध्ययनमें अभिनिविष्ट होकर सर्व्वविद्यामें पारदर्शी होता। इसके उपरान्त यौवनको प्राप्त होकर इन्द्रियार्थसमूह कृतार्थ कर बहुत स्रक्चन्दनवनितादि भोग करता। तब धर्म्मवत्सल गुणवान् बहुत पुत्र उत्पादन होनेके बाद अपनी राज्यलक्ष्मी उनलोगोंको अर्पण कर फिर तपस्या करता। इस बालक वयसमें तपस्यामें प्रवृत्त होनेमें, कितना श्रम है। छुटनेकी आग सबकी पैरकी अंगूठेमें है, फिर शिरतक उठनेमें कितना विलम्ब लगता है। अत्र विजित, अपमा-

'नत और श्रीभ्रष्ट इन तीन व्यक्तिमें ही कोई व्यक्ति तपस्या कर सकता है, किन्तु तुम उनमें कौन व्यक्ति हो? अपमानित व्यक्तिका तपस्या करना उचित है।" यह बात सुनकर ध्रुव, दीर्घ उष्ण निश्वास परित्याग करके पुनः हृदयमें हरिकी चिन्ता करने लगे। माताके साथ बात न करके और भूतका भय परित्यागकर, ध्रुव, फिर अच्युतध्यानपरायण हुए। बहु भीषण-भूषण-भूषित भूतसङ्घाने ध्रुवको भय दिखाते दिखाते अपनी चारो ओर सूर्य्यमण्डलके परिवेषवत् दैदीप्यमान सुदर्शनचक्र देखा। ध्रुवकी राक्षसगणके हाथसे रक्षा करनेके लिये भगवान् नारायणने ही इस चक्रकी व्यवस्था की थी। भूतावली, चतुर्द्दिक् वेष्टन करके ध्रुवरक्षणतत्पर ज्वालामालासङ्कुल अत्युज्ज्वल तीव्र सुदर्शनचक्र देखकर और अतीव स्थिरचेता, गोविन्दमें अर्पितचित्त हो, जैसे पृथिवी भेद करके उगता हुआ तपोवृक्षका अङ्कुर, उन ध्रुवको ध्रुवनिश्चय देखकर भूतावलीने ही भय पाया! तब वह लोग विफलमनोरथ हो ध्रुवको नमस्कार करके यथास्थानको प्रस्थानकर गये। जैसे गर्जन करता हुआ आकाशव्यापी जलदजाल, अल्पमात्र पवन चलनेपर भी विफल होता है, अर्थात् कहींका कहीं उड़ जाता है। हे द्विज! फिर भीतिग्रस्त सब देवता इन्द्रके साथ परामर्श करके शीघ्र जाकर ब्रह्माके शरणापन्न हुए। इन्द्रादि देवगणके ब्रह्माकी स्तुति प्रणति करनेपर, ब्रह्माने उन लोगोंके आगमनका कारण पूछा। बातका अवसर देखकर उन लोगोंने कहा, "हे विधातः! महातेजा उत्तानपादतनयकी कठोर तपस्याके तेजसे सब त्रैलोक्यवासी सन्तप्त हुए हैं। हे तात! ध्रुवके मनमें क्या है। वह महातपाः हमलोगोंमें किसका पद हरण करनेके अभिलाषी हैं, वह हम लोग अच्छी तरह नहीं जानते।" देवताओंके इस प्रकार कहनेपर, चतुराननने हंसकर उन ध्रुवभीतचेता देवगणसे कहा, "देवगण! नित्यपदाभिलाषी ध्रुवसे तुमको भय नहीं है। निश्चिन्त होकर जाओ; तुम लोगोंके पदकी वह इच्छा नहीं करते। उन भगवद्भक्तसे किसीको भी कहीं डरनेकी आवश्यकता नहीं है। जो निश्चय विष्णुभक्त होता है, वह परसन्तापदायी नहीं होता। यह विष्णु-आराधना सम्पूर्ण होनेपर, ध्रुव विष्णुसे अपने अभीष्टको प्राप्त होकर, तुम लोगोंके पदको और भी दृढ़तर करेंगे।" देवगण ब्रह्माप्रयुक्त यह बात सुन अत्यन्त हृष्ट होकर ब्रह्माको प्रणाम करके अपने अपने स्थानको गये। फिर नारायण देव, बालक ध्रुवको दृढ़चित्त और अनन्यभक्त देखकर गरुड़रथसे वहां आकरके बोले, बालक! अनेक दिनसे तपस्याका कष्ट पाते हो, इस तपस्यासे निवृत्त हो। हे

महाभाग! मैं प्रसन्न हुआ हूं; हे सुव्रत! तुम वरकी प्रार्थना करो। ध्रुवने वह अमृतायमान वचन सुन नयनयुगल खोलकर इन्द्र नीलमणिका ज्योतिःपटल अवलोकन किया। उन्होंने देखा, आकाश और पृथिवीका सरोवर मानो नवविकसित नीलोत्पल श्रेणी द्वारा शोभा पा रहा है! उस समय ध्रुवने देखा, द्यावा-पृथिवीके अन्तर्गत निखिल स्थान ही लक्ष्मीदेवीके इन्दीवरविनिन्दी नयनके कटाक्षधारापातसे परिपूर्ण हुआ है। विद्युत्शोभितमध्य, नवनील जलदजालके समान शोभासम्पन्न पीताम्बर कृष्णको उन्होंने सामने देखा। सुवर्णरेखाङ्कित निकषपाषाणके (कसौटी पत्थरके) समान, गोदमें-सुवर्णगिरि-सुमेरु, अनन्त नील नभोमण्डल जैसा दिखाई देता है, ध्रुवने उस समय पीताम्बर गरुड़ध्वजको भी उसी रूपमें अवलोकन किया। ध्रुवने उस समय पीताम्बरपरिधान हरिको चन्द्रविभूषित गगनमण्डलकी तरह देखा। दुःखित शिशु सन्तान, जैसे बहुत दिनोंके बाद पिताको देखनेसे, फूट फूटकर रोता है, शिशु ध्रुव भी उस समय उन जगत्-पिताके अवलोकन मात्रसे दण्डवत् प्रणाम करके दुःख स्मरण करते हुए चारो ओर लोट पोटकर रोने लगे। नारद, सनक, सनन्द और सनत्कुमार प्रभृति अन्यान्य योगिगणद्वारा संस्तुत योगीश्वर चक्रपाणिके नयन-नलिनद्वय कारुण्यवाष्पसलिलसे सिक्त हुए; उन्होंने हाथ धरकर ध्रुवको उठाया। फिर अस्त्रधारण प्रयुक्त सुकठोर कर युगल द्वारा हरिने ध्रुवका धूलिधूसरित अङ्ग स्पर्श किया। उन देव देवके स्पर्शमात्रसे ही ध्रुवके मुखसे सुसंस्कृत वाक्य निर्गत हुआ; तब वह नारायणका स्तव करने लगे।

विंश अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

एकविंश अध्याय।

ध्रुवकृत विष्णुस्तव और ध्रुवकी उन्नति।

सर्व्वसृष्टिकारी हिरण्यगर्भरूपी, हिरण्यरेता निर्म्मल-ज्ञान-प्रदाता आपको नमस्कार करता हूं। भूत-संहारकारी हर-स्वरूपी महाभूतात्माभूतपति आपको नमस्कार करता हूं। हे स्थितिकारी विष्णु-स्वरूप, महाभार-सहिष्णु, तृष्णाहर प्रभु कृष्ण आपको नमस्कार करता हूं। दैत्य-गण महावनमें दावानलस्वरूपी आपको नमस्कार है। हे दैत्यद्रुमसमूहके छेदि कुठार स्वरूप शार्ङ्गपाणि! आपको नमस्कार करता हूं। हे गदाधर! कौमोदकी गदा आपके कराग्रमें उद्यत है, हे नन्दक-खड्गधारिन् महादानव-विनाशक! आपको नमस्कार है। आप वराहरूपसे पृथिवी उद्धारकारी चक्रधार परमात्मा श्रीपति हैं, आपको नमस्कार करता हूं। मत्स्यादि

रूपधारी आपको नमस्कार है; जिनका वक्षस्थल कौस्तुभमणि-विभूषित, उन्हीं आपको नमस्कार है। वेदान्तवेद्य आपको नमस्कार है, श्रीवत्सधारी आपको नमस्कार है। सगुण, निर्गुण और गुणस्वरूप आपको नमस्कार है। हे पाञ्चजन्यधारी पद्मनाभ! आपको नमस्कार है। हे देवकीनन्दन वासुदेव! आपको नमस्कार है। आप प्रद्युम्न हैं, आपको नमस्कार है, आप अनिरुद्ध, आपको नमस्कार है, आप कंसविनाशक, आपको नमस्कार है, आप चाणूरमर्द्दन, आपको नमस्कार है, हे दामोदर! हृषीकेश! गोविन्द! अच्युत! माधव! उपेन्द्र! कैटभारे! मधुसूदन! अधोक्षज! हे नरकहारिन्! पापहारिन्! नारायण! हे वामन! आपको नमस्कार है। हे शौरे! हे हरे! आपको नमस्कार है। अनन्त, अनन्तशायी, रुक्मगर्व्वखर्व्वकारी रुक्मिणीपति, आपको नमस्कार है। हे शिशुपालविनाशन! दानवारे! असुरघ्नो! हे मुकुन्द! हे परमानन्द! हे नन्दगोप-प्रिय! आपको नमस्कार है। हे वसुजेन्द्रनिसूदन! पुण्डरीकाक्ष! आपको नमस्कार है! वेणुवादनकारी गोपालरूपी आपको नमस्कार है। आप गोपीवल्लभ,—केशिविनाशन और गोवर्द्धन गिरिधर हैं, आप श्री राम, रघुनाथ, राघव हैं, आपको वारंवार नमस्कार करता हूं। हे रावणारे! हे विभीषणरक्षक! हे रणाङ्गण विचक्षण, जयस्वरूप अज! आपको नमस्कार। आप क्षणादि कालस्वरूप, आप नानारूपधर, आप शार्ङ्गधर, गदाधर, चक्रपाणि, आप दैत्यसमूहके विनाशकारी, आपको नमस्कार। हे बल! हे बलभद्र! हे इन्द्रप्रिय! हे वलियज्ञप्रमथन! हे भक्तवरप्रद! आपको नमस्कार है। हे हिरण्यकशिपु-वक्षःस्थलविदारक! समरप्रिय! गो-ब्राह्मणके हितकारी ब्रह्मण्य-देव! आपको नमस्कार करता हूं। धर्मरूपी आपको नमस्कार है, सत्त्वगुणरूपी आपको नमस्कार है, आप सहस्रशीर्षा परम पुरुष हैं, आपको नमस्कार है। हे सहस्राक्ष! हे सहस्रपाद! हे सहस्रकिरण! हे सहस्रमूर्त्ते! यज्ञपुरुष श्रीकान्त! आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप वेद-प्रतिपाद्य, आप वेदप्रिय, वेदवक्ता और वेदस्वरूप, आप सदाचारपथके प्रवर्त्तक, आपको नमस्कार करता हूं। हे वैकुण्ठ! आपको नमस्कार है। हे वैकुण्ठवासिन्! आपको नमस्कार है। हे गरुड़वाहन विष्टरश्रवा! आपको नमस्कार। हे विघ्नकर्द्दन! जगन्मय! जनार्द्दन! आपको नमस्कार है। हे सत्य! सत्यप्रिय! त्रिविक्रम! आपको नमस्कार है। हे ब्रह्मवादिन्! माया-मय केशव! आपको नमस्कार है, आप तपस्या स्वरूप और तपस्याके फलदाता, आपको नमस्कार है। आप स्तवयोग्य, स्तवस्वरूप और भक्तस्तवपरायण आप श्रुति स्वरूप और श्रोताचारप्रिय

आपको नमस्कार है। अण्डज-प्राणिस्वरूपी आपको नमस्कार, स्वेदज प्राणिरूपी आपको नमस्कार और जरायुज और उद्भिज्ज प्राणिस्वरूपी आपको नमस्कार। आप देवगणमें इन्द्रस्वरूप, ग्रहगणमें सूर्य्य, आप लोक समुदायमें सत्यलोक, समुद्र गणमें क्षीर समुद्र हैं। आप नदी समूहमें-गङ्गा, सरोवरनिकरमें मानसरोवर हैं। आप पर्व्वतगणमें हिमालय,धेनुवृन्दमें कामधेनु हैं। आप धातुओंमें सुवर्ण, पाषाणसमूहमें स्फटिक, आप पुष्पसमूहमें नीलपद्म, गुल्म-वृक्षमें तुलसी, आप सर्व्वपूज्यमें शालग्राम-शिला, मुक्तिक्षेत्रमें काशी, तीर्थश्रेणीमें प्रयाग, वर्णोंमें श्वेतवर्ण, आप द्विपाद प्राणि-योंमें ब्राह्मण हैं; हे ईश्वर! आप पक्षियों-गरुड़, लौकिक प्रयोजनीय वस्तुमें वाक्य, सब वेदमें उपनिषद्, मन्त्र समूहमें प्रणव; आप अक्षर मालामें अकार, नक्षत्र-गणमें चन्द्र, आप प्रतापशालियोंमें अग्नि, सहिष्णु गणमें सर्व्वंसहा हैं। आप हादगणमें पर्ज्जन्य, पवित्र वस्तुओंमें जल, आप निखिलअस्त्रोंमें धनु, वेगसम्पन्नोंमें वायु, आप इन्द्रिय वर्गोंमें मन, अभय सूच-कोंमें अस्त, आप व्यापक पदार्थोंमें आकाश, निखिल आत्माओंमें परमात्मा हैं; हे देव! आप सर्व्व नित्य कर्म्मोंमें सन्ध्योपा-सना, यज्ञसमूहमें अश्वमेध, आप यावत दानोंमें अभयदान, सम्पूर्ण लाभोंमें पुत्र-लाभ; आप ऋतुगणमें वसन्त, आप युग-समूहोंमें सत्ययुग; तिथिवृन्दमें कुहू (अमावस्या विशेष) आप नक्षत्रगणमें पुष्या, सर्व्व पर्व्वोंमें संक्रान्ति, आप योग संहतिमें व्यतीपात, तृणराजिमें कुश, आप चतुर्व्वर्ग फलमें मोक्ष हैं। हे अज! सर्व्व बुद्धियोंमें आप धर्म्मबुद्धि हैं। आप सर्व्व वृक्षोंमें अश्वत्थ, लताओंमें सोमवल्ली, आप सर्व्व पवित्र साधनोंमें प्राणायाम, आप सब शिवलिङ्गोंमें सर्व्वाभीष्टदायी श्रीमान् विश्वेश्वर, आप आत्मीयवर्गोंमें पत्नी, समग्र वस्तुओंमें धर्म्म हैं, नारायण! आपके व्यतीत चराचर जगतमें कुछ भी नहीं है; आप माता, आप पिता, आप सुहृद, आप उत्तमधन, आप सुख सम्पत्ति हैं; हे जीवने-श्वर आप आयु; जिसमें आपका नाम है, वही कथा कथा है; जो आपमें अर्पित है, वही मन मन है; जो आपके लिये किया जाता है, वही कर्म्म कर्म्म है और आपको ध्यानात्मक तपस्या वही तपस्या है। जो आपके लिये व्यय होता है, धनाढ्योंका वही धन विशुद्ध धन है; हे विष्णो! आप-की जिस समय पूजा होती है, वही समय सफल है। जितने दिन आप हृद-यमें रहते हैं, उतने दिन ही जीवित रहना श्रेयस्कर है, आपकी पादोदकसेवासे रोग सब प्रशमको प्राप्त होते हैं। हे गोविन्द! वासुदेव इस नामके स्मरण मात्रसे बहुजन्मा-र्ज्जित महापातकराशि भी तत्क्षणात् विनष्ट होती है। घोर! मनुष्यके जैसा अन्धा-

मोह है! ओह! मनुष्यके कैसा प्रमाद है! वह लोग वासुदेवका आदर न करके और विषयमें भ्रम करते हैं। यह जो दामोदर नाम कीर्त्तन है, यही मङ्गलकर, यही धनार्ज्जन, और यही जीवनका फल है। अधोक्षज भिन्न धर्म्म नहीं, नारायण व्यतिरिक्त अर्थ नहीं, केशव व्यतीत काम नहीं और हरि बिना मुक्ति नहीं। वासुदेवका अर्च्चा न करना; वही परम हानि, वही उपसर्ग और वही परम अभाग्य है। आह! हरिकी आराधना पुरुषको क्या क्या सिद्ध नहीं करती? हरिआराधना, पुत्र, मित्र, कलत्र, अर्थ, राज्य, स्वर्ग, और मुक्ति पर्य्यन्त प्रदान करती है। हरि आराधना पापहरण करती आधि व्याधि विनष्ट करती, धर्म्मवर्द्धित करती, एवं शीघ्र मनोरथ सम्पादन करती है। एकाग्रभावसे भगवच्चरणयुगल ध्यान, अति ही उत्तम; पापीव्यक्ति भी प्रसङ्ग क्रमसे यदि यही ध्यान करे, तो उसका परम हित होता है! एकाग्रभावसे हरिका ध्यान और नामोच्चारण करनेसे, पापीगणका जितना पाप यहांतक, कि महापातक पर्य्यन्त नष्ट होते हैं। जैसे अनलकणा अज्ञानतासे स्पृष्ट होनेपर भी दग्ध करता है, उसी तरह हरिनाम किसी प्रकारसे भी ओष्ट-पुट संस्पृष्ट होनेसे पाप हरण करता है। जो मनुष्य क्षण कालके लिये भी कमलाकान्तकी एकान्त प्रशान्त चित्त समाधानपूर्व्वक उपासना करते हैं, उनकी लक्ष्मी अचला होती हैं। विष्णुपादोदक पीना ही परमधर्म्म, परम तपस्या और परम तीर्थ है। हे यज्ञपुरुष! जो मनुष्य आपके प्रसादी नैवेद्यको भक्तिपूर्व्वक सेवा करता है, वह महामति निश्चय ही पुरोडाश (यज्ञ चरु) सेवन करता है; अर्थात् प्रधान देवता होता है। जो मनुष्य, विष्णु पादोदक शङ्खमें लेकर तद्द्वारा स्नान करता है, उसे अवभृथ (यज्ञान्त) स्नानका और गङ्गा स्नानका फल होता है। जो मनुष्य तुलसी पत्र द्वारा शालग्राम शिला पूजा करते हैं, वह देवलोकमें पारिजातमाल्य द्वारा पूजित होते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा इतर जातिकी भी विष्णुभक्तियुक्त होनेसे सर्वोत्तम जानना। जिनकी देहमें—वाहुद्वयमें शङ्ख, चक्र अङ्कित, मस्तकपर तुलसीमञ्जरी और अङ्ग गोपीचन्दन द्वारा लिप्त है, उन्हें देखनेसे भी पाप नाश होता है। जो लोग प्रत्यह द्वारकाचक्रसमन्वित द्वादश शालग्रामशिलाकी पूजा करते हैं, वह वैकुण्ठमें सम्मानपूर्व्वक वास करते हैं। जिनके गृहमें नित्य तुलसीकी पूजा होती है, यमकिङ्कर लोग उनके गृहमें कभी नहीं जाते। जिनके मुखमें हरिनाम, ललाटपर गोपीचन्दन और वक्षस्थलमें तुलसीमाला है, यमके अनुचरवर्ग उन्हें छू नहीं सकते; गोपीचन्दन, तुलसी, शङ्ख, शालग्राम, और द्वारकाचक्र यही पांचन वस्तु जिनके गृहमें हैं; उन्हें पापका भय नहीं है।

बिना हरिस्मरणके जो सब क्षण मुहूर्त्त, जो सब काष्ठा, जो सब निमेष अतिक्रान्त होते हैं, उनके इन सब समयकी आयु यम द्वारा अपहृत होती है। कहां ज्वलन्त अग्निस्फुलिङ्ग-सदृश हरिनाम और कहां रूईतुल्य महान् पापराशि! परमानन्द मुकुन्द मधुसूदन गोविन्द व्यतीत और किसीको जानता, भजता और न स्मरण करता हूं। इस समय मैं हरि भिन्न किसीको नमस्कार नहीं करता, स्तव नहीं करता, आंखसे नहीं देखता, स्पर्श नहीं करता, गान नहीं करता और हरिमन्दिर व्यतीत नहीं जाता! मैं जल, स्थल, पाताल, अनिल, अनल, पर्व्वत, विद्याधर, सुरासुर, नर, वानर, किन्नर, तृण, स्त्रैण, पाषाण, तरु, गुल्म और लता सर्व्वत्र हीको श्याम कलेवर श्रीवत्स-वक्षःस्थल श्रीकृष्णको अवलोकन करता हूं। आप सबके हृदयवासी साक्षात् साक्षीहैं; आप सर्व्वग हैं आपके बिना बाह्य और अभ्यन्तरमें मैं और किसीसे अवगत नहीं हूं। श्रियश्रीमन! ध्रुव उस समय यह कहकर विरत हुए। भगवान् नारायण देवने, प्रसन्ननयनसे ध्रुवको कहा, अयि स्थिरमते! विशालाक्ष! निष्पाप! बालक! ध्रुव! मैं तुम्हारे हृदयस्थ मनोरथसे विदित हूं। भो ध्रुव! अन्नसे सब भूतोंकी उत्पत्ति है, वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता है, उसी वृष्टिका कारण सूर्य्य है, तुम सूर्य्यके आश्रय हो। अनवरत गगनमण्डलमें चतुर्द्दिकसे घूर्णमान ग्रह-नक्षत्रादि समग्र ज्योतिश्चक्रके तुम आधार होगे। तुम केन्द्र बनकर वायु-पाश नियन्त्रित कुल ज्योतिर्गणको घुमाते हुए प्रलयतक इसी पदपर अधिष्ठित रहो। मैं पूर्व्वकालमें श्रीमहादेवकी आराधना करके जो इस पदको प्राप्त हुआ था, तुम्हारे तपोबलसे मैंने तुम्हें वह पद प्रदान किया। हे ध्रुव! चतुर्युगतक कोई कोई स्वाधिकार भोग करते हैं, कोई कोई मन्वन्तर कालतक स्वपदपर अधिष्ठित रहते हैं, तुम कल्पान्तपर्य्यन्त यह अधिकार पालन करोगे। वत्स! ध्रुव! दूसरे मनुष्योंकी क्या बात कहूं? मनु भी जिस पदको प्राप्त नहीं हुए, इन्द्रादि देवगणको भी दुर्लभ वह पद मैंने तुमको दिया है। तुम्हारे इस स्तवसे परितुष्ट होकर मैं और सब वर भी प्रदान करता हूं;— तुम्हारी माता सुनीति भी तुम्हारे समीपचारिणी होंगी। जो मनुष्य एकाग्रचित्तसे इस श्रेष्ठ स्तोत्रका त्रिसन्ध्या पाठ करेगा, उसका समस्त पाप नाश होगा। लक्ष्मी उसके गृहमें निश्चल रहेंगी। उसका मातृवियोग न होगा और बन्धुवर्गसे कलह न होगा। यह पुण्ययुक्त ध्रुवकृतस्तुति महापातकविनाशिनी है। और पापियोंकी बात क्या कहें?—इस स्तोत्रके पाठसे ब्रह्मघाती भी पापमुक्त होता है। यह स्तुति महापुण्यसम्पादिनी, महासम्पत्तिदा-

यिनी और महाव्याधिविनाशिनी है। जिस निर्म्मलचेता मनुष्यको मेरे प्रति परमा भक्ति है, मेरी प्रीतिविधायिनी यह ध्रुवकृत स्तुति वह पाठ करेंगी। मनुष्य सम्पूर्ण तीर्थस्नान द्वारा जो फल पा सकता है, प्रीतिपूर्व्वक यह स्तव पाठ करनेसे उसे वह तीर्थस्नानका फल मिल सकता है। मेरे प्रीतिकर कई स्तोत्र हैं सही; किन्तु इस ध्रुव-स्तुतिके षोड़शांशके एकांशयोग्य भी कोई नहीं है। मनुष्य, परम श्रद्धायुक्त आनन्द-पूर्व्वक यह स्तोत्र श्रवण करनेसे भी सद्यः पापराशिसे मुक्त होता है और महत् पुण्य लाभ करता है। यह ध्रुव-कृत स्तव कीर्त्तन करनेसे, अपुत्रकके पुत्र, निर्द्धनके धन और अभक्तकी भक्ति होती है। इस स्तुति द्वारा मनुष्यको जैसी अभीष्टप्राप्ति होती है, अनेक दान करनेसे नाना व्रत करनेसे भी उस प्रकार अभीष्टप्राप्ति नहीं होती। सर्व्व-कर्म्म परित्याग करके नानाविध पाठ्य त्याग करके यह सर्व्वकामप्रदायिनी ध्रुव कृत स्तुति ही पाठ्य है। श्रीभगवान् बोले, ध्रुव, मनोयोग करो; हे महामते! तुम्हारा यह पद जैसे सम्यक स्थिर होगा, वही हितोपदेश तुम्हें दूंगा;—जहां मुक्तिदाता विश्वेश्वर साक्षात् अवस्थित हैं, मैं इससे पहिले उसी शुभा वाराणसीपुरीमें जानेका अभिलाषी होता हूं। इस काशीमें स्वयं विश्वेश्वर मृत प्राणियोंके कर्णमें कर्म्मनिर्म्मूलनसमर्थ तारकमन्त्र उपदेश करते हैं। यह सर्व्वो-पद्रवदायी संसारदुःखका एकमात्र निस्ता-रोपाय आनन्दभूमि काशी है। "यह रमणीय यह रमणीय नहीं" इस प्रकारका जो प्रियाप्रिय ज्ञान है, वही दुःख महा-तरुका बीज है, काशीरूप अग्नि द्वारा वह बीज दग्ध होनेसे, दुःखका अवसर कहां? जो प्रधान लक्ष्य है, वह इसी काशीकी सहायतासे मिलता है। यह काशी प्राप्त होनेसे फिर संसारका कष्ट और नहीं मिलता और यह परम निर्वृत्तिका स्थान है, इसीलिये काशीका नाम "आनन्द-कानन" है। जो पुरुष इस मुक्तिक्षेत्र शिव-जीका "आनन्द-कानन" परित्याग करके अन्यत्र वास करता है, उनका सुखोदय किस प्रकार होगा? काशीमें चाण्डालके घरमें भिक्षाके लिये शराव-हस्तसे फिरना अच्छा है, किन्तु अन्यत्रका निष्कण्टक राज्य भी अच्छा नहीं। मैं विश्वेश्वरकी पूजा करनेके लिये जगद्वन्दनीया विश्वे-श्वर-पूजिता काशीमें वैकुण्ठसे नित्य आता हूं। मुझमें जो त्रिलोकपालिनी परमा शक्ति है, महेश्वर ही उसके कारण हैं, उन्होंने मुझे सुदर्शन चक्र प्रदान किया है। पूर्व्वकालमें मेरे भीतिप्रदाता जालन्धर दैत्यको महेश्वरने अपने पदाङ्गुष्ठसे चक्र बनाकर उससे विनष्ट किया। मैंने नयन-कमल द्वारा प्रभु महेश्वरकी अर्च्चना करके वह दैत्यचक्रविमर्द्दन सुदर्शनचक्र

लाभ किया है। भूतविद्रावण वह परम सुदर्शनचक्र तुम्हारी रक्षाके लिये पहले-ही प्रेरण किया है, इस समय मैं ही आया हूं। अब मैं विश्वेश्वर-दर्शनके लिये काशी जाऊंगा; आज कार्त्तिकी पूर्णिमा है, आजकी 'यात्रा' बहुपुण्यदायिनी है। जो मनुष्य कार्त्तिक महीनेकी चतुर्द्दशीको उत्तरवाहिनी गङ्गा स्नान करके विश्वेश्वर दर्शन करते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। हरिने इतना कहकर आनन्द-स्निग्ध ध्रुवको गरुड़ारोहण करा महेश्वराधिष्ठिता काशीकी यात्रा की। जनार्द्दन देव, पञ्चक्रोशीकी सीमापर उपस्थित होकर ध्रुवका हस्त धारणपूर्व्वक गरुड़से उतरे। तत्पश्चात् ध्रुवको लेकर मणिकर्णिकामें स्नान और विश्वेश्वर-पूजा करके भगवान नारायणने, ध्रुवके हितकरणाभिलाषसे उनसे कहा, इस अविमुक्त क्षेत्रमें यत्नपूर्व्वक शिवलिङ्ग स्थापन करो, इससे त्रैलोक्यस्थापनपुण्यके सदृश तुम्हें अक्षय पुण्य होगा। अन्यत्र एक नियुत शिवलिङ्ग स्थापन करनेसे जो पुण्य होता है, इस काशीमें एक लिङ्ग स्थापनसे वही पुण्य प्राप्त होता है। इस स्थानमें काल पाकर जीर्ण किसी देवालयका जो मनुष्य जीर्णोद्धार करता है, उसके फलका अन्त प्रलयमें भी नहीं होता। जो मनुष्य वित्त-शाठ्य परित्यागकर इस स्थानमें देव-प्रासाद निर्म्माण करा देता है, नियुतयोजन समग्र सुमेरु दानका फल उसे होता है। जो मनुष्य इस जगह कूप, वापी, तड़ाग-यत्नानुसार निर्म्माण करा देता है, अन्यत्र इन सबके करनेसे जो पुण्य होता है, तदपेक्षा कोटि गुणाधिक पुण्य उसे लाभ होता है। जो लोग पूजाके हेतु इस काशीमें सुरम्य पुष्पोद्यान निर्म्माण करते हैं, उसके प्रति पुष्पसे सुवर्ण कुसुमापेक्षा अधिक फल होता है। जो मनुष्य इस काशीमें, वेदपाठमन्दिर बनाकर एक वर्ष भोग्य भोज्य द्रव्यके सहित उसे ब्राह्मणोंको दान करता है, उसका पुण्य फल संक्षेपमें श्रवण करो;—समुद्रकी जलराशि कदाचित शुष्क हो जाय, पृथ्वीकी त्रसरेणु भी कदाचित क्षयको प्राप्त हों, तथापि शिवलोकप्राप्त उस मनुष्यका पुण्य क्षय नहीं होता। जो मनुष्य इस काशीमें मठ निर्म्माण कराकर और मठस्थ लोगोंको जीविका निर्व्वाहका उपाय करके, वह मठ तपस्विगणको प्रदान करता हैं, उसका पुण्य भी पूर्व्ववत है। इस स्थानमें महा-पुण्य सञ्चय करके जो मनुष्य, उसे विश्वेश्वरमें अर्पण करते हैं, घोर संसारसागरमें उसे पुनरागमन नहीं करना होता। इस जगतमें मेरा "अनन्त" यह नाम कीर्त्तित होता है, परन्तु मुझे भी काशीकी गुणावलीका अन्त नहीं मिला है। अतएव, ध्रुव! काशीमें यत्नपूर्व्वक धर्म्मकार्य्यका अनुष्ठान करना; काशीमें अनुष्ठित धर्म्मका फल, अक्षय होता है। विष्णुपरिषद्‌दय

बोले, गरुड़ध्वजने, ध्रुवको यह उपदेश दे-कर गमन किया। ध्रुवने भी वैद्यनाथलिङ्गके समीप लिङ्गस्थापनकर, सुमहत् देवप्रासाद और उसके सम्मुख कुण्ड बनवा विश्वेश्वर-पूजन पूर्व्वक कृतार्थ होकर गृहको गमन किया। मनुष्य, ध्रुवेश्वरकी पूजा और ध्रुव-कुण्डमें स्नानादि जलकृत्य करनेसे भोग-समन्वित होकर ध्रुवलोकको प्राप्त होते हैं। जो लोग ध्रुवका यह परम उपाख्यान पाठ करते हैं अथवा पाठ कराते हैं, वह लोग विष्णुलोक प्राप्त होकर विष्णुके प्रीतिभाजन होते हैं।

एकविंश अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

द्वाविंश अध्याय।

तीर्थमाहात्म्य।

शिवशर्म्माने कहा, हे विष्णुपारिषद्द्दय! यह महापातकनाशन, महाविचित्र, पवित्र, रमणीय ध्रुवोपाख्यान सुनकर मैं तृप्त हुआ हूं। अगस्त्यने कहा, इस प्रकारकी बात शिवशर्म्मा जब कर रहे थे, उस बीचमें ही वायुवेगगामी उनका विमान स्वर्लोकसे पर-माद्भुत महर्लोकमें उपस्थित हुआ। फिर सर्व्वत्र तेजोवृत वह लोक देखकर द्विज शिवशर्म्माने उन विष्णुपारिषद्द्दयसे कहा, यह मनोहर लोक किसका है? तब उन लोगोंने ब्राह्मणसे कहा, हे महामते! स्वर्लोकके बाद परमाद्भुत प्रसिद्ध महर्लोक यही है। तपस्या द्वारा जिनकी पाप-राशि एकदमसे निर्धूत हुई है वही कल्पा-न्तजीवी भृगु प्रभृति ऋषिगण, विष्णुस्मरण द्वारा समस्त कर्म्मराशिसे विमुक्त होकर इस लोकमें वास करते हैं। महायोगिगण निर्व्वीज समाधि द्वारा जगत्को तेजोमय अवलोकन कर अन्तमें देवप्रवर हो इस लोकमें वास करते हैं। प्रिये! लोपामुद्रे! भगवत्पारिषद्द्दय इसी प्रकार बात कर रहे थे, इसी बीचमें उस विमानने उन लोगोंको च्चणार्द्धमात्रमें जनलोकमें उपस्थित किया। जनलोकमें ब्रह्माके मानसपुत्र सन-न्दनादि निर्म्मल योगीन्द्रगण वास करते हैं। यह सभी ऊर्द्धरेताः हैं। अस्खलित-ब्रह्मचर्य्य, शीतोष्णादि सर्व्वद्वन्द्व-विमुक्त, अन्यान्य निर्म्मल योगी भी इस जनलोकमें वास करते हैं। मनोवेगगामी उस विमानने जनलोक अतिक्रम करके तपोलोक उन्हें दिखाया। वैराज देवगण और वासुदेवमें ही जिसका मन अर्पित है या समस्त कर्म्म जिसने वासुदेवको अर्पण किया है, वह सब मनुष्यगण दाह विवर्जित होकर इस तपोलोकमें वास करते हैं। जितेन्द्रिय व्यक्तिगण, निष्कामभावकी तपस्या द्वारा गोविन्दका सन्तोषसाधन करनेपर, अन्तमें इस तपोलोकको लाभ कर वास करते हैं। जो शिलोञ्छवृत्तिसम्पन्न हैं; जो दन्तोलुखलिक हैं; जो सब मुनि अश्म-कुट्ट हैं; जो गलितपत्रभोजी हैं; जो

ग्रीष्ममें पञ्चाग्नितपाः हैं ; वर्षामें अनावृत-भूमिशायी और हेमन्तऋतुमें समग्र या शिशिरऋतुमें अर्द्धेक कालतक जलमें रहकर रात्रियापन कर तपस्या करते हैं ; जो तपोनिमनिष्ठ मनुष्यगण तृष्णार्त्त होनेपर भी कुशाग्रस्थित जलविन्दुमात्र पीते हैं और क्षुधित होनेपर भी वायुमात्र भोजन करते हैं ; जो अगले पैरके अंगूठे द्वारा भूतल स्पर्श करके तपस्या करते हैं, जो ऊर्द्धबाहु हैं ; जो सूर्य्यमें अर्पितदृष्टि हैं ; जो एक पैरसे स्थिरभावसे खड़े रहते हैं ; जो द्विवसमें निरुच्छ्वास हैं ; जो महीनेके अन्तमें निश्वास परित्याग करते हैं ; जो मासोपवास व्रती हैं ; जो चातुर्म्मास्यव्रती हैं ; जो एक एक ऋतुके समाप्त होनेपर जलमात्र पान करके रहते हैं ; जो पराभापोपवासी हैं ; जो वर्षके अन्तमें निमेषपातन करते हैं जो वृष्टिधारा-जलमात्र पान करके रहते हैं ; जो स्थाणु-तुल्यताप्राप्त होकर मृगगणके गात्रमर्षण-सुखके हेतु हुए हैं ; जिन लोगोंके जटा-जूटके गहनकोटरमें, पक्षिगणने, घोसला निर्म्माण किया है ; जिनका अङ्ग वल्मीकावृत है ; जिनका अस्थि-समूह स्नायु द्वारा बद्ध अर्थात् मांसहीन है ; जिनका सब अवयव लताप्रतानसे वेष्टित है; जिनके अङ्गमें सब शस्य कितने ही कालसे उत्पन्न होकर रहे हैं, इत्यादि उत्तम तपःक्लिष्ट ऐह तपोधनगण, ब्रह्माके समान आयुःप्राप्त होकर अकुतोभयसे इस तपोलोकमें वास करते हैं।

शिवशर्म्माने विष्णुपारिषद्वयके मुखसे यह बात सुनते सुनते महोज्वल सत्यलोक-देखा। तब विष्णुपारिषद्वयने शिवशर्म्मा सहित जल्द जल्द विमानसे उतरकर सर्व्वलोकस्रष्टा ब्रह्माको प्रणाम किया, ब्रह्माने कहा, हे विष्णुपारिषद्वय ! यह ब्राह्मण बुद्धिमान्, वेदवेदाङ्गपारग, स्मृत्युक्त आचार पालनमें विख्यात और पापकर्म्मके प्रतिकूल हैं। अहो महाप्राज्ञ द्विज शिव-शर्म्मन् ! मैं तुम्हें जानता हूं ; वत्स ! उत्तम तीर्थमें प्राण त्यागकर तुमने अच्छा किया है ! तुमने जो कुछ देखा, वह समस्त ही दैनन्दिन प्रलय अतःअचिरविनाशी है और मैं पुनः पुनः उसकी सृष्टि करता हूं। महादेव प्रतिपदसे विराटपर्य्यन्त संहार करते हैं, मशकसदृश मरणधर्म्मी मनुष्यगणकी, तो बात ही नहीं है। जरायुज, अण्डज उद्भिज्ज और स्वेदज,इन चार प्रकारके भूतग्राममें मनुष्यगणका एकमात्र गुण यही है, कि इस कर्म्मभूमि विशाल भारत-वर्षमें चपल इन्द्रियगणको अपने मानस द्वारा जय करके सब गुणोंके शत्रु लोभको त्याग और धर्म्मनाशक अर्थसञ्चयविरोधी जरा-पलितकर्त्ता कामको विचार द्वारा निराकृत करते रहें। इसके उपरान्त धैर्य्य द्वारा तपस्या, यशः, श्री और शरीरका नाशक या तामसगतिके प्रापक क्रोधको जीतकर प्रमादके निदान मदको परित्याग करके प्रमादके

एक मात्र शरण्य, सम्पद्का निवारक और सर्व्वत्र लघुता हेतु अहङ्कारको विदूरित और सज्जनके भी दूषणारोपक द्रोहकारी, मतिघाती, ज्ञाननाशक अन्धतामिस्रदर्शक मोहको जो त्याग करते हैं, वही वेद स्मृति और पुराणप्रोक्त महाजनाचरित धर्म्मसोपानमें आरूढ़ हो इस स्थानमें अनायास आगमन करनेमें सक्षम होते हैं। स्वर्गवासिगण भी कर्म्मभूमिप्राप्तिकी इच्छा करते हैं; क्योंकि यह लोग कर्म्मभूमिमें जो जो अर्ज्जन करते, वही उत्कृष्टापकृष्ट स्थानमें भोग करते हैं। आर्य्यावर्त्त जैसा देश, काशी जैसी पुरी और विश्वेश्वरतुल्य लिङ्ग किसी ब्रह्माण्डमण्डलमें नहीं है। दुःखरहित, सुकृतका एकमात्र फलस्वरूप, सर्व्वसमृद्धिपूर्ण बहुतसे स्वर्ग हैं। इस ब्रह्माण्डमण्डलमें स्वर्लोकसे अधिक रमणीय स्थान नहीं है। इसलिये, कि सभी तपस्या, दान और व्रतादि द्वारा स्वर्गके निमित्त चेष्टा करते रहते हैं। नारदने पातालसे समागत होकर स्वर्गवासिगणसे कहा था, कि पाताल स्वर्गलोकसे रमणीय है। जिस पातालमें आह्लादकारी शुभ्र सुप्रभ मणिसमूह नागगणके अलङ्कारणसे गुथा है, वह पाताल किसी स्थानके समान हो सकता है? इतस्ततः दैत्यदानवकन्यासे परिशोभित पातालमें किस विमुक्त व्यक्तिकी भी प्रीति न होगी। जिस जगह दिनमें सूर्य्यकिरण केवल प्रभा वितरण करता है, आतपसे तापित नहीं करता; रात्रिकालमें चन्द्ररश्मि शीत दान नहीं करती, चन्द्रिका केवल विकाश करती है; जहांके दनुजादि अधिवासिगण समय अतिवाहित होनेपर भी जान नहीं सकते; जहां रमणीय वन और नदी है, विमलसलिल सरोवर, कोकिलालापकाल, शुभ्र अत्युत्तम वस्त्र, अति रमणीय भूषण, अनुलेपन गन्धयुक्त, वीणा वेणु मृदङ्गादि ध्वनि अतिमात्र सुननेमें रमणीय और सर्व्वकामद हाटकेश्वर महालिङ्ग विराज रहे हैं, इसके अतिरिक्त अन्यान्य नाना उपभोग्य वस्तु पातालान्तरवासी दानव, दैत्य और उरगगण उपभोग करते हैं। हे द्विज! और इलावृतवर्ष पातालसे रम्य है, वह चतुर्द्दिक सुमेरु पर्व्वतका आश्रय लेकर अवस्थित है। हे द्विज! उस स्थानमें सुकृतकारिगण सर्व्वदा ही सर्व्व भोग वस्तु भोग करते हैं और वहांकी हरिणनयना रमणीगण नवयौवन-सम्पन्न हैं। वह भोगभूमि है। तपः फलके विनिमयसे यह लाभ होती है। जिसने तुम्हारी तरह तीर्थमें देहत्याग किया है, सत्यवादी है, पुत्रकलत्रादि हीन है और सुख आयुः या धनक्षय करके भी परोपकार करता है, वही इस स्थानके भोग करनेमें समर्थ होते हैं। पारावारमें बहुतर द्वीप अवस्थित हैं; उनमेंसे जम्बु-द्वीपके तुल्य कोई द्वीप ही जगतीतलमें नहीं दिखाई देता। इस जम्बुद्वीपमें भी

वष हैं। उनमें से भारतवर्ष सर्व्वोत्तम है। वह कर्मभूमि, देवगणको भी दुर्लभ है। अपर आठ वर्ष किम्पुरुषादि नामसे अभिहित हैं। वह आठो ही देवभोग्य हैं। देवगण स्वर्गसे इन सब वर्षमें आगमन करके क्रीड़ा करते हैं। इस भारतवर्षका विस्तार नौ सहस्र योजन है। यह जम्बूद्वीपका प्रथम वर्ष, सुमेरु पर्व्वतके दक्षिणामें अवस्थित है। उनमें हिमालय और विन्ध्य पर्व्वतका मध्यवर्त्ती स्थान विशिष्ट पुण्यप्रद है, उनमें गङ्गा और यमुनाकी मध्यवर्त्ती अन्तर्वेदि उत्कृष्ट भूमि है। कुरुक्षेत्र सब क्षेत्रोंसे बढ़कर है। उससे और उत्तम नैमिषारण्य स्वर्गसाधन है। इस क्षितिमण्डलमें नैमिषारण्य और अपर सब तीर्थोंसे, स्वर्ग, मोक्ष और सर्व्वकामफलप्रद उत्कृष्ट तीर्थराज प्रयाग है। यह मेरा क्षेत्र है और तीर्थराज नामसे विख्यात है। पूर्व्वकालमें मैंने समस्त याग और कामपूरक इस रमणीय तीर्थको तुलामें धारण किया था। दक्षिणा द्वारा पुष्ट यागनिचयसे इसको उत्कृष्ट देखकर हरिहरादि देवगणने इसका (प्र—याग) नाम रखा। इस प्रयागका नाममात्र स्मरण करनेसे मानवशरीरमें त्रिकालका पाप वास करनेमें सक्षम नहीं होता। पापनाशकारी अनेक तीर्थ हैं सही, किन्तु इस प्रयाग तीर्थसे अधिक सञ्चितपापनाशक कोई नहीं है। असंख्य जन्मजन्मान्तरका सञ्चित पापसमूह, जो व्रत, दान, तपः, जप द्वारा अपनोदित नहीं होता, प्रयाग-गमनोद्यत व्यक्तिका वह सभी पाप वायुताड़ित वृक्षकी तरह कम्पित होने लगता है। फिर प्रयाग-गमनमें दृढ़चित्त पुरुषके अर्द्धपथ अतिक्रम करनेपर पापराशि उसके शरीरसे निर्गत होनेके लिये स्थानान्तर दर्शन करती है। इसके उपरान्त भाग्यवशतः तीर्थराज प्रयागके देखनेपर सूर्य्योदयसे अन्धकारकी तरह सब पाप अति शीघ्र भाग जाते हैं। सप्तधातुमय शरीरमें जितने पाप हैं, वह केशका आश्रय लेकर रहते हैं, अतएव प्रयागमें केश वपन करना चाहिये। इस प्रकार पापशून्य होकर गङ्गायमुनासङ्गममें स्नान करनेसे जो जो कामना की जाय, वह निःसन्देह प्राप्त होती है। कामनाशील पुरुषगणके प्रयागमें स्नान करनेसे विपुल पुण्यराशि, पवित्र भोग और इसके बाद स्वर्ग प्राप्त होता है और निष्काम व्यक्तिको मोक्ष प्राप्त होता है। अन्य कामना परित्याग कर मुक्ति अभिलाष करके स्नान करनेसे कामप्रद तीर्थराजमें मुक्ति लाभ होता है। जो व्यक्ति तीर्थराजको परित्याग करके अन्यतीर्थसे काम इच्छा करते हैं, वह निश्चय ही भारतवर्षमें काम प्राप्त नहीं होते। हे द्विज! सत्यलोक और प्रयागमें कौन विशेष है, इस मतमें हमारी विवेचना नहीं होती। इस

प्रयागमें जितने शुभकर्म्मा मनुष्य हैं, वह हमारे लोकवासी हैं। पृथ्वीमण्डलमें कोई भी प्रयागके अतिरिक्त तीर्थान्तरकी सेवा न करें। हे द्विजश्रेष्ठ! राजा और उनके सेवकमें जितनी दूरका अन्तर है, प्रयाग और तदितर तीर्थमें उतना ही प्रभेद है। नर, चाहे किसी प्रकारसे इस प्रयागमें प्राण त्याग करें, उनको आत्महत्याका पाप नहीं होगा। जिन भाग्यवान् व्यक्तिकी अस्थि प्रयागमें रहे, उसे किसी जन्ममें दुःखका लेश भी नहीं होता। ब्रह्महत्यादि पापका प्रायश्चित्त करनेकी इच्छा होनेसे, वेद-वाक्यानुसार यथाशास्त्र प्रयागकी सेवा करें, इसमें संशय नहीं। हे विप्रेन्द्र! अधिक और क्या कहूं! अत्यन्त वृद्धिकी इच्छा होनेसे जगतीतलमें सर्व्वोत्तम सितासित तीर्थकी सेवा करें। सब भुवनमें तीर्थेश्वर प्रयागसे, काशीमें देहावसन होनेसे, अनायास ही मुक्ति होती है। अतएव स्वयं विश्वेश्वराधिष्ठित अविमुक्त क्षेत्र प्रयागसे रम्य है। विश्वेश्वराधिष्ठित अविमुक्त क्षेत्रसे रम्य ब्रह्माण्डमण्डलमें कुछ भी नहीं है। पञ्चक्रोश प्रमाण अविमुक्त क्षेत्र ब्रह्माण्ड मध्यवर्त्ती होनेपर भी वह ब्रह्माण्डके अन्तर्भूत नहीं है। प्रलयकालमें एकार्णव जल जितना ही बढ़ता है, महादेव इस क्षेत्रको उतना ही ऊंचा करके रखा करते हैं। हे द्विज! यह क्षेत्र महादेवके त्रिशूलाग्रके अन्तरीक्षमें अवस्थित है। मूढ़बुद्धिगण भूमिस्थित यह क्षेत्र देख नहीं सकते। इस विश्वेश्वराश्रममें सदा सत्ययुग और महापर्व्व विराजमान हैं, इस स्थानमें ग्रहगणका उदयास्तकृत दोष नहीं है। जिस जगह विश्वेश्वर रहते हैं, वह सदा सौम्यायन और महोदय है। हे विप्र! भूमितलमें सहस्र सहस्र जो पुरी हैं, काशीकी वैसी विवेचना न करना, यह एक असाधारण पुरी है। हे विप्रेन्द्र! मैंने चतुर्द्दश भूमिकी सृष्टि की है, किन्तु इस पुरीके निर्म्माता स्वयं प्रभु महादेव हैं। पूर्व्वकालमें यमने दुष्कर तपस्याचरण करके काशीके अतिरिक्त त्रैलोक्यका आधिपत्य प्राप्त किया था। काशीवासिकृत कर्म्म छोड़कर सब स्थावर जङ्गमका काम चित्रगुप्तके गोचरीभूत है। महेश्वरके प्रथम परिरचित काशीमें कभी भी यमदूतगणका प्रवेशाधिकार नहीं है। स्वयं विश्वेश्वर काशी-मृतगणके नियन्ता हैं। काशीमें जो पाप करता है, उन लोगोंके नियन्ता कालभैरव हैं। अतएव उस स्थानमें पाप करना उचित नहीं है। करनेसे जो केवल रुद्रयातना हो हो, ऐसा नहीं; किन्तु नरकसे भी दुःसह रुद्र पिशाचत्व होता है। "पाप करेंगे हो" यदि ऐसी बुद्धि हो, तो विपुल पृथिवीमें और किसी जगह सुखसे पाप करना उचित है। कामातुर होनेपर भी जन्तु एकमात्र मातासे व्यभिचार नहीं

करता ; पापकारी होनेपर भी मोक्षार्थी होकर एकमात्र काशीमें पापाचरण न करें। जो परापवादशील और परदाराभिलाषी हैं, उनको काशीसेवा करना उचित नहीं है। कहां मोक्षदात्री काशी और कहां यह नरक तुल्य व्यक्ति! जो प्रतिग्रह धनाभिलाष या कपटता द्वारा परस्वाभिलाष करते हैं, वह काशीसेवा न करें। काशीमें नित्य ही परपीड़ाकर कार्य्य त्याग करें; यदि वही करें, तो ऐसे दुरात्माओंके काशीवासका प्रयोजन क्या है? जो विश्वेश्वरकी भक्ति त्यागकर दूसरे देवताकी भक्ति करता है, वह कभी भी पिनाकपाणिकी राजधानीमें वास न करे। हे विप्र! जो अर्थार्थी या कामार्थी मानव हैं, वह मुक्तिदायक अविमुक्त क्षेत्रमें वास न करें। जो नर, शिवनिन्दा और वेदनिन्दानिरत हैं और जो वेदाचारके प्रतिकूलाचारी हैं, वह वाराणसीकी सेवा न करें। जो परद्रोह परोपकारनिरत और परोपतापी हैं, काशीमें उन लोगोंकी सिद्धि नहीं होती। जो दुर्बुद्धिगण मन ही मन भी काशीका अभिनन्दन नहीं करते, उन दुर्वृत्तियोंके निर्व्वाणकी बात दूर-पराहत है। भूमण्डलमें कहीं भी ज्ञानके सिवा मोक्ष नहीं होता। वह ज्ञान, चान्द्रायणादि व्रत, श्रद्धान्वित उत्तम देशमें यथाशास्त्र सत्पात्रको प्रतिपादित तुलापुरुष दान, यम, ब्रह्मचर्य्यादि नियम, अर्च्चना, शरीरशोषक उग्र तपस्या, गुरु-प्रतिपादित महामन्त्र जप, स्वाध्याय, यथोक्त अग्निशुश्रूषा, गुरुसेवा, श्राद्ध, देवतार्च्चन और नाना तीर्थयात्रा द्वारा भी लाभ नहीं होता। योग बिना ज्ञान नहीं होता। तत्वार्थ-शीलन ही योग है। वह गुरु-पदिष्ट मार्ग द्वारा सदा अभ्याससे लाभ किया जाता है। इसका सुदूर श्रवणादि बहु अन्तराय है; अतएव एक जन्ममें योगसे ज्ञान प्राप्ति नहीं होती। हे द्विजोत्तम! तुमने शुद्धबुद्धिसे काशीमें जो श्रेयः अर्ज्जन किया है, उसका परिणाम बहुत उत्कृष्ट है। गणद्वयके सामने ब्रह्मा इस प्रकार कहकर विरत हुए। यह सुनकर महामना शिवशर्म्माको नितान्त प्रमोद प्राप्त हुआ।

द्वाविंश अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥

त्रयोविंश अध्याय।

नारायणाभिषेक।

शिवशर्म्माने कहा, हे सत्यलोकेश्वर! सर्व्वभूत प्रपितामह! विधातः! मैं कुछ विज्ञापन करनेकी इच्छा करता हूं, किन्तु मुझे उत्साह नहीं होता है। ब्रह्माने कहा, हे विप्र! तुम जो पूछनेकी इच्छा करते हो, मैं तुम्हारा मनोगत वह भाव जान चुका हूं; तुम निर्व्वाणकी बात पूछना चाहते हो, वह यह गणद्वय

तुमसे कहेंगे। इन विष्णुगणद्वयसे अगोचर कुछ भी नहीं है। ब्रह्माण्डमें जो कुछ है, यह लोग उन सबसे विदित हैं। ब्रह्माके यह कहकर उन विष्णुगणोंका सत्कार करनेपर इनलोगोंने लोककर्त्ता ब्रह्माको प्रणामकर हृष्टान्तःकरणसे प्रस्थान किया; पुनर्व्वार स्वकीय यानपर आरूढ़ हो वैकुण्ठाभिमुख गमन किया चलते चलते शिवशर्म्माने गणद्वयसे पूछा, हमलोग कितनी दूर आये, और कितनी दूर हमलोगोंको जाना होगा? हे भद्रद्वय! आप लोगोंसे और भी एक बात पूछता हूं, उसे भी प्रीतिपूर्व्वक कहिये। काञ्ची, अवन्ती, द्वारवती, काशी, अयोध्या, मायापुरी, और मथुरा, यह सात पुरी मुक्तिप्रद हैं। उनमें "काशीहीमें मुक्ति प्रतिष्ठित है" यह ब्रह्माने कहा था। तब क्या हमारी मुक्ति न होगी? आपलोग प्रसन्न होकर हमारे सम्मुख इसका यथार्थ उत्तर दीजिये। गणद्वय शिवशर्म्माकी यह बात सुनकर आदरपूर्व्वक कहने लगे! हे अनघ! तुमने जो प्रश्न किया, उसका यथार्थ उत्तर देता हूं; हमलोग विष्णुके प्रसादसे भूत, भविष्यत, और वर्त्तमान सब जानते हैं। हे ब्राह्मण! चन्द्र और सूर्य्यकी किरण जितनी दूर उद्भासित करे, वह समुद्र, पर्व्वत और काननयुक्त स्थान 'भू' कहकर कीर्त्तित है। आकाश उसके ऊपर विभागमें भूमिके न्याय दीर्घ और मण्डलाकारमें अवस्थित है। भूमिसे नियुत योजन ऊंचेपर सूर्य्य अवस्थित हैं। भानुके निकटसे लक्ष योजन ऊपर क्षपाकर लक्षित होते हैं। चन्द्रसे लक्ष योजन अन्तरपर नक्षत्रमण्डल हैं; वहांसे द्विलक्ष योजन ऊंचेपर बुध; बुधसे द्विलक्ष योजन अन्तरपर शुक्र; मङ्गल शुक्रसे द्विलक्ष योजन ऊंचेपर हैं; वृहस्पति, मङ्गलसे नियुतद्वय ऊपर हैं; वृहस्पतिसे द्विलक्ष योजन ऊंचेपर शनि हैं; शनिसे लक्षयोजन ऊर्द्ध सप्तर्षिमण्डल है और सप्तर्षिसे लक्षयोजन ऊपर भागमें ध्रुव अवस्थान करते हैं। धरणीतलमें जो कुछ वस्तु पादगम्य है, समुद्र, द्वीप, पर्व्वत और काननके सहित वह समस्त भूर्लोकके नामसे प्रसिद्ध है। भूर्लोकसे सूर्य्य पर्य्यन्त भुवर्लोक, वहांसे ध्रुव पर्य्यन्त स्वर्लोक, क्षितिके एक कोटि योजन ऊर्द्ध महर्लोक, दो कोटि योजन ऊंचे जनलोक है, चार कोटि योजन ऊंचे तपोलोक, क्षितिसे आठ कोटि योजन ऊंचे सत्यलोक और सत्यलोकके ऊपरी भागमें वैकुण्ठ है। वह भूर्लोकसे षोड़श कोटि योजन ऊंचेपर अवस्थित है। जिस जगह सर्व्वभूतके अभयप्रद साक्षात् कमलापति विराजमान हैं, उस वैकुण्ठसे षोड़श गुण महादेवका निलय कैलास है। जिस कैलासमें सर्व्वस्वरूप विश्वेश्वर शम्भु पार्व्वती, गणेश, कार्त्तिक और नन्दी

सहित अवस्थान करते हैं। वह दृश्यमान प्रपञ्च उनका लीलास्वरूप है, उन्होंने लीलावश मूर्त्ति धारण की है। वह विश्वेश्वरके नामसे विख्यात हैं; यह जगत उनका आज्ञाकारी है। वह सबके शास्ता हैं, उनका शास्ता कोई नहीं। वह स्वयं भूतकी सृष्टि, पालन और लय करते हैं। वह एक ही सर्व्वज्ञ हैं, उनकी चेष्टा स्वेच्छाधीन और उनका प्रवर्त्तक या निव र्त्तक नहीं है। जो श्रुतिनोदित अमूर्त्त और समूर्त्त परब्रह्म हैं; वह वही हैं; जो सर्व्व-व्यापी, सर्व्वदा नित्य, सत्यस्वरूप और द्वैत विवर्ज्जित हैं, वह वही हैं। उन महदादि सम्पूर्ण कारणसे जो प्रधान हैं, वह उससे भी प्रधान हैं। वेद जिन्हें आनन्द ब्रह्मका रूप कहते हैं; जो वेदके भी अगोचर हैं; जिन्हें विष्णु ही जानते हैं, विधि नहीं जानते; ध्यानसे असमर्थ होकर जिनसे वाक्य और मन निवृत्त होता है; जो स्वयं वेद्य पर-ज्योतिः हैं, सबके हृदयमें अवस्थित हैं, जो योगिध्येय, अनाध्येय और एकमात्र प्रमाणगोचर हैं। वह नानारूप होने-पर भी रूपशून्य हैं, सर्व्वग होनेपर भी किसीके गोचर नहीं हैं। अनन्त, अकृत, सर्व्वज्ञ और कर्म्मवर्ज्जित उनका इस प्रकार ईश्वर रूप है,—चन्द्रखण्ड अवतंस, गलदेश तमालके न्याय श्यामल-वर्ण, ललाटमें तृतीय-लोचन विस्फुरित, वामार्द्धभाग नारीरूपसे सुशोभित हैं। अनन्तदेव उनके अङ्गद हैं; गङ्गातरङ्गके सङ्गसे जटातट विधौत होता है। अङ्ग अनङ्गगात्रभस्मसे उज्ज्वल है। वह विचित्र-गात्र महासर्पभूषणसे विभूषित, वृषरथा-रूढ़, अजगरधनुर्द्धारी, गजाजिनोत्तरीय, पञ्चवदनमङ्गलदाता, महामृत्युके त्राण-दाता, महाबलप्रमथपरिवृत, शरणा-गतके त्राणकारी, प्रणत जनके मोक्षप्रद, मनोरथपथातीत, और वरदानपरायण हैं। हे द्विज! उन्हीं तत्वस्वरूप रूपातीत महादेवका सगुण निर्गुण संसार-दुःखविनाशी रूप विश्वव्यापी हो रहा है। निराकार होनेपर भी साकार वह शिव ही मुक्ति और भोगके कारण हैं। शिवसे पृथक् मोक्षदाता और कोई नहीं है। रूपविहीन विष्णुने जिस प्रकार इस चराचर दृश्य अदृश्य विश्वको शिवसात् किया है; हे विप्र! उसी प्रकार उमा-पति भी अखिल जगत्को विष्णुसात्कर स्वाधीन लीलाके वशीभूत हो क्रीड़ा करते हैं। जैसे शिव, वैसे ही विष्णु और जैसे विष्णु वैसे ही शिव हैं। शिव और विष्णुमें कुछ भी भेद नहीं है। पूर्व्वकालमें महादेवने, ब्रह्मादि समस्त देवगण, विद्याधर, उरग, सिद्ध, गन्धर्व्व, चारणगणको बुला-कर, अपने सिंहासनके तुल्य शुभसिंहा-सन पर, उसपर हरिको उपवेशन करा मनोहर, रमणीय, कोटिशलका-

युक्त, विश्वकर्म्मा से निर्म्मित, पाण्डुर वर्ण, रत्नदण्ड, स्थूलमुक्तावलम्बित, ऊपरसे विचित्र कलसयुक्त, सहस्र योजन विस्तृत, सर्व्वरत्नमय, पट्टसूत्रमय, चामर-शोभित छत्र निर्म्माण कर राज्याभिषेकयोग्य सर्व्वौषधि आदि द्रव्य संग्रह कर पञ्चकुम्भस्थित, सिद्धार्थ, अक्षत, दूर्व्वामिश्रित तीर्थजलमें प्रक्षालन कराके, देवगणकी, ऋषिगणकी, सिद्धगणकी और फणिगणकी, षोड़श षोड़श मङ्गलपाणि कन्या बुलाकर, वीणा मृदङ्ग, शङ्ख, भेरी, मरु, डिण्डिम, झर्झर, आनक, कान्स्यतालादि वाद्य ललित गान और वेदध्वनिसे गगनाङ्गण पूरित होनेपर, शुभ-तिथि, शुभलग्न और चन्द्रताराबलयुक्त क्षणमें आवद्धमुकुट, कृतकौतुकमङ्गल, मृड़ानीरचितवेष, सश्री लक्ष्मी समन्वित, रमणीय हरिको स्वयं ब्रह्माण्डमण्डपमें अभिषिक्तकर, जो औरोंको भोग्य नहीं, वह निज ऐश्वर्य्य दान किया था। तदनन्तर, देवेश्वर शिवने प्रमथगणके सहित शार्ङ्गपाणिका स्तव किया और लोककर्त्ता ब्रह्मासे यह बात कहा, यह विष्णु हमारे वन्दनीय हैं, तुम इन्हें प्रणाम करो। रुद्रने यह कहकर स्वयं गरुड़ध्वजको प्रणाम किया। अनन्तर गणेश्वरगण ब्रह्मा, मरुद्गण, सनकादि योगिसमूह, सिद्धसमूह, देवर्षिनिचय, विद्याधर निकर, गन्धर्व्वगण, यक्ष रक्ष, अप्सरागण, गुह्यक सकल, चारणचय, शेष, वासुकि, तक्षक, पतत्रिगण, किन्नर और समस्त स्थावर, जङ्गमने, "जय जय" और "नमोहस्तु नमोहस्तु" कहा था। अनन्तर परमार्द्धि:सम्पन्न महेश्वरने देवसभामें इन सब बातों द्वारा पूजा की थी "तुम्हीं सब भूतोंके कर्त्ता, पाता और संहर्त्ता हो; तुम्हीं जगतके पूज्य; तुम्हीं जगदीश्वर हो। तुम्हीं धर्म्म, अर्थ और मोक्षके दाता हो; तुम्हीं दुर्नयकारीके शास्ता; तुम संग्राममें मेरे भी अजेय होगे। इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति यह शक्तित्रय मैं तुम्हें देता हूं, ग्रहण करो। जो लोग तुम्हारे द्वेष्टा हैं, मैं यत्नपूर्व्वक उनलोगोंका शासन करूंगा और तुम्हारे भक्तगणको उत्तम निर्व्वाण दान करूंगा। तुम सुरासुरको दुष्परिहार्य्य यह माया ग्रहण करो, यह विश्व मायामें अभिभूत होकर कुछ भी ज्ञात नहीं हो सकेगा। तुम मेरे वाम बाहु और यह पितामह दक्षिण-बाहु। तुम इन विधिके भी पाता और जनक होगे।" इस प्रकार स्वयं हर, हरिको वैकुण्ठैश्वर्य्य दान करके प्रमथ-गणके सहित स्वच्छन्दसे कैलासमें क्रीड़ा करते हैं। उसी समयसे शार्ङ्गधन्वा, गदा-धर, दानवान्तकारी हरि, त्रैलोक्यका शासन करते हैं। हे विप्र! तुमसे इस लोककी परिस्थिति कही, अब तुम्हारे निर्व्वाणका कारण कहता हूं। जो मनुष्य यह

उत्कृष्ट आख्यान समाहित-चित्तसे श्रवण करते हैं, वह लोकमें गमन करके अनन्तर काशीमें निर्व्वाण पाते हैं। यज्ञमें, उत्सवमें, विवाहमें, समस्त मङ्गलकार्य्यमें, राज्याभिषेकके समय, देवस्थापन कार्य्यमें, सर्व्वाधिकार दानमें और नवगृहप्रवेशमें उस कार्य्यकी सिद्धिके निमित्त इसे यत्नपूर्व्वक पाठ करें। इसके पाठ करनेसे अपुत्र पुत्र लाभ करते, धनहीन धनवान होते, पीड़ित पीड़ासे विमुक्त होते, बद्ध बन्धनसे मुक्त होते, अतएव मङ्गलार्थी प्रयत्नके सहित इसका जप करें। यह आख्यान अमङ्गलका शमन महादेव और नारायणका प्रिय है।

त्रयोविंश अध्याय समाप्त॥ २३॥

चतुर्व्विंश अध्याय।

शिवशर्म्माकी निर्व्वाणप्राप्ति।

गणद्वयने कहा, हे शिवशर्म्मन्! हम तुम्हारा परिणाम कहते हैं, सुनो। तुम तीर्थमरणप्राप्त पुण्यके अवशिष्ट अंश द्वारा, इस वैष्णव लोकमें ब्रह्माके पूर्ण एक वर्षतक अप्सरागणके साथ प्रभूत ऐश्वर्य्य भोग कर, नन्दिवर्द्धन नगरके राजा होगे। अमपत्न, सम्पन्नबलवाहन, हृष्ट-पुष्ट स्वर्णभूषणधारी इष्टापूर्त्त धर्म्मकर्म्ममें नित्य अनुष्ठाता पण्डितगण-सेवित, सदा सम्पन्नशस्य, उर्व्वरक्षेत्रसङ्कुल, सदेश, सुप्रज, सुस्थ, सुत्रण, बहुगोधन, और देवगृहसमूहमें विराजित राज्यको प्राप्त होगे। जिस राज्यमें सब ग्राम सुरूप और सुविस्तृति-विराजित हैं; जहांके सब कृत्रिम उद्यान उत्कृष्ट पुष्पसे विभूषित और सदा फलप्रद पादपगणसे शोभित हैं; जिस भूमिके सब सरोवर पद्मयुक्त समलङ्कृत हैं, नदीनिचय स्वच्छ और स्वादु सलिलयुक्त हैं, जहां किसी जगह अधिक जनता नहीं है; जिस जगहके सभी कुलीनशब्दवाच्य गोत्र हैं; अन्यायाधिगत धन कुलीन (कु पृथिवीमें लीन) नहीं हैं; जिस जगह विभ्रम नारीमें ही है, पण्डितमें नहीं; नदी सभी कुटिल गामिनी हैं, किन्तु प्रजानिचय वैसे नहीं; जिस जगह कृष्णपक्षकी तमोयुक्त रात ही है, मनुष्यगण तमोयुक्त नहीं; स्त्री ही रजोयुक्त हैं, किन्तु धर्म्मप्रधान मनुष्यगण वैसे नहीं हैं; जिस जगहके धनहेतु मनुष्यगण ही अनन्ध अर्थात् अहङ्कारहीन हैं, किन्तु भोजन अनन्धः (अन्धस् भात् उससे रहित) नहीं हैं; जिस जगह रथ अनयः (अयस् लौहसे रहित) है, किन्तु राजपुरुषगण अनय अर्थात् नीतिशून्य नहीं हैं; कुठार, कुद्दाल, चामर और छत्र ही दण्ड है, किन्तु क्रोधापराध वशत मनुष्य दों ऐसा नहीं; वहां अव्यवहारी व्यक्ति ही परिदेवन अर्थात् क्रीड़ा करते हैं, किन्तु और कोई व्यक्ति परिदेवन अर्थात् विलाप नहीं करता; जिस जगह द्युतिक्रीड़ाशील

व्यक्ति ही पाशकपाणि हैं, दूसरा कोई भी पाशकपाणि अर्थात् रज्जुपाणि नहीं हैं; जिस जगह जल ही में जाड्य है, स्त्रीमें ही कृश है; रमणीहृदय ही कठोर है, किन्तु मनुष्यगण कठोर नहीं हैं; जहां औषध प्रकरणमें ही कुष्ट शब्दका प्रयोग है, किन्तु मनुष्यके कुष्ट नहीं है; जहां तिथि और नक्षत्र ही वेध है, अर्थात् दूसरेके साथ संयोग है; ज्योतिः प्रसिद्ध योगसे ही शूल है; जिस जगह रत्नमें ही वेध होता है और मूर्त्तिकरमें ही शूल दिखाई देता है, किन्तु किसी मनुष्यको वेधताड़ या शूलरोग नहीं होता; जहां सात्विक भावसे ही कांपते हैं, भयवश नहीं; जिस जगह कामसे सन्ताप होता है, कलुषका अभाव है; पापकी ही दुर्लभता है, सुकृतिकी नहीं; जिस जगहके हाथीगण प्रमत्त हैं, जलाशयमें तरङ्गद्वयसे ही युद्ध है, जहां गजके दानकी ही हानि है, वृक्षमें ही कण्टक है; जहां मनुष्यगणका ही विहार है, किन्तु किसीका भी वक्षःस्थल विहार (हारशून्य) नहीं है; बाणके ही गुणसे वियोग है, पुस्तकका ही दृढ़ बन्धन है; जहां पाशुपतव्रतधारीका ही स्नेहत्याग है, संन्यासियोंका दण्ड ही वार्त्ता है; जहां धनुषसे ही मार्गण अर्थात् बाण है, किन्तु और जगहमें मार्गण अर्थात् याचक नहीं हैं; जहांके ब्रह्मचारी ही भिक्षुक हैं, और कोई नहीं; हां अर्हदुपासक क्षपणकगण ही मलधारी हैं, और कोई भी मल अर्थात् पापधारी नहीं हैं; और जहां भ्रमरगण ही चञ्चलवृत्ति इत्यादि गुणसम्पन्न देशके शौण्डीर्य्यगुणशाली, सौन्दर्य्यवान्, शौर्य्य औदार्य्य गुणान्वित हो तुम्हारे धर्म्मतः राज्य शासन करनेसे लावण्यवती रमणीय अयुत रमणी तुम्हारी रानी होंगी और तीन सौ कुमार लाभ करोगे। तुम वृद्धकालमें विख्यात वीर और परपुरञ्जय होगे। तुम कितने ही समर जय करोगे और सम्पत्ति द्वारा याचकगणका तृप्तिसाधन करोगे। तुम पूर्णचन्द्रद्युति और सब गुणके आकर होगे। अवभृथ स्नानसे तुम्हारा केश सदा सिक्त होगा। प्रजापालनतत्पर राजश्रेष्ठ होगे; कोषद्वारा विप्रगणकी प्रीति उत्पादन करोगे और आलस्यशून्य होकर गोविन्दका पदारविन्द ध्यान करते हुए दिनरात वासुदेव कथामें ही समय बिताओगे। हे ब्राह्मण! तुम्हारे भाग्यबलसे किसी समयमें काशीसे कई यात्री राजसभामें आकर तुम्हें इस प्रकार आशीर्व्वाद देते हुए कहेंगे, "जगद्गुरु काशीनाथ श्रीमान् विश्वेश्वर तुम्हारी कुमति ध्वंस करें; स्मरण करनेसे भी जो मुक्तिसम्पत् वितरण करते हैं, वह काशीनाथ तुम्हें अमल ज्ञान उपदेश करें। जिस पुण्यसे तुम इस अकण्टक प्रभूत राज्यको प्राप्त हुए हो, उस पुण्यके अवशिष्ट अंश द्वारा तुम्हारा मन विश्वेश्वरको अर्पित

हो। जिन विश्वनाथके प्रसन्न होनेपर, आयुः, पुत्र, वरनारी, समृद्धि, स्वर्ग और मोक्ष सुलभ होता है, वह विश्वनाथ प्रसन्न हों। जिनके नाम सुननेसे महापातकका भी नाश होता है, वह विश्वेश्वर तुम्हारे हृदयमें अवस्थान करें।" तुम वृद्धकालमें भूपति हो आशीर्व्वाद परम्परा सुनते हुए पुलकितकलेवर होकर यह वृत्तान्त स्मरण करोगी। किन्तु आकार छिपाये हुए उन लोगोंको बहुत धन दान कर सुमुहूर्त्तमें पुत्रके हाथ राज्य अर्पणकर रानी अनङ्गलेखाके साथ काशीमें जाओगे। प्रभूत दान द्वारा अर्थिगणकी प्रीति उत्पादन करके अपने नामसे विख्यात निर्व्वाणकारण शिवलिङ्ग संस्थापनकर उस स्थानमें उच्च प्रासाद और उसके आगे कूप निर्म्माणकर उसमें कलसारोपणादि करके, मणि, माणिक्य, चाम्पेय, दुकूल, हाथी, गोधन, महाध्वज, पताका, छत्र, चामर, दर्पण प्रभूत देवोपकरण अकृपणचित्तसे दानकर व्रत, उपवास और नियम द्वारा क्षीणकलेवर हो उस काशीमें मध्याह्नकालमें निर्जन देशमें एक तपोधनको देखोगे। उन तपोधनका शरीर अतीव जीर्ण, जटा नितान्त पिङ्गलवर्ण है। वह साक्षात् जनमनोहर उन्नत धर्म्मकी तरह शोभमान हैं। वह यष्टिका भार दृढ़ यष्टिको अर्पणकर शिवभवनसे निष्क्रान्त हो रङ्गमण्डपमें आते होंगे। वह तुम्हारे पास आकर अनुक्रमसे इस प्रकार प्रश्न करेंगे, "तुम कौन हो? इस जगह क्यों आये हो? और तुम्हारी द्वितीयकी तरह यह कौन है? यदि अवगत हो, तो कहो, किसने यह प्रासाद निर्म्माण किया है? इन शिवलिङ्गका नाम क्या है? मैं वार्द्धक्य वशतः इससे विदित नहीं हूं।" इस तरह वृद्ध तपस्वीके पूछनेपर तुम कहना, "मैं वृद्धकाल नामक दाक्षिणात्य राजा हूं, इस जगह पत्नी सहित आया हूं। मैं इन लिङ्गका ध्यान करता हूं, किन्तु कुछ भी प्रार्थना नहीं करता; हे जटिल! स्वयं शिव इस प्रासादके कारयिता हैं। मैं इन लिङ्गके नामसे विशेष विज्ञात नहीं हूं।" जटाधारी नरपतिकी यह बात सुनकर कहेंगे, "तुमने यह सच कहा है, कि लिङ्गका नाम नहीं जानते। मैं नित्य ही तुम्हें सुनिश्चल भावसे उपविष्ट देखता हूं; अतएव तुमने सुना होगा, कि किसने यह प्रासाद बनवाया है। यदि इस तत्त्वसे अवगत हो, तो मुझसे कहो।" उनकी यह बात सुनकर तुम फिर कहोगे, "झूठ क्यों कहूं? शम्भु ही कर्त्ता और कारयिता हैं। अथवा हे विभो! तपस्विन्! मेरी ऐसी चिन्तासे फल क्या है?" तुम्हारे ऐसा कहकर चुप होनेपर वह वृद्ध तापस फिर कहेंगे, "मैं प्यासा हुआ हूं। जल लाकर मुझे दो।"

उनके प्रेरित करनेपर कूपसे जल लाकर तुम उन्हें पिलाना। जलपान करके तत्-क्षणात् वह वृद्धतापस, निर्म्मोकमुक्त भुजङ्गकी तरह पूर्णिमाचन्द्र-सदृश सुप्रभ तरुण और रूपसम्पन्न होंगे, तब तुम आश्चर्य्यान्वित हो उनसे फिर कहोगी, "हे भगवन्! आप जो जरा त्याग करके तरुण हो शोभा पाते हैं, यह किस प्रभावसे? हे तपोधन! यदि अवकाश हो, तो कहिये।" तपोधन कहेंगे, "हे! वृद्धकाल नरपते! मैं तुम्हें जानता हूं और इन पतिव्रता तुम्हारी पत्नीको भी जानता हूं। यह इस जन्मके पहले तुर्व्वसु नामक ब्राह्मणकी सदाचारान्विता सुमुखी कन्या थीं। तुर्व्वसुने नैध्रुव नामक एक महात्माको विवाहार्थ इनका दान किया। नैध्रुव यौवन प्राप्त होते ही कालधर्म्मको प्राप्त हुए। यह वैधव्य पालन करते करते अवन्तीमें मृता हुईं। उसी पुण्यसे पाण्ड्य नरपतिकी कन्या हुईं और हे राजन्! इन पतिव्रतासे तुमने विवाह किया है। अब इस जगह तुम्हारे साथ आकर मुक्ति लाभ करेंगी। अयोध्या, अवन्ती, मथुरा, द्वारवती, काञ्ची और मायापुरीमें पातकिगणके भी निधन प्राप्त होनेसे वह स्वर्गसे इस स्थानमें आकर मोक्षको प्राप्त होते हैं। हे नृप! मैं तुम्हें भी जानता हूं। तुम अगले जन्ममें मथुरावासी शिवशर्म्मा नामक द्विज थे। तुम मायापुरीमें मृत हुए थे। उसी पुण्यसे वैकुण्ठ प्राप्त होकर मनोरम भोग उपभोग करके, उसी पुण्यके शेषांशसे नन्दिवर्द्धनमें राजा हुए हो। हे वृद्धकाल महीपाल! उस सुकृतबलसे ही इस मोक्षक्षेत्र वाराणसीमें आये हो और मुक्ति लाभ करोगे। हे राजेन्द्र! और भी कहता हूं, सुनो; तुमने जो कहा, शम्भु इस प्रासादके कर्त्ता और कारयिता हैं, सो सच है। पुण्यकर्म्म कहीं भी प्रकाश न करना। 'मैंने किया है, ऐसी बात कहनेसे, पुण्य तत्क्षणात् क्षयको प्राप्त होता है। अतएव धनकी तरह पुण्यको बहुत यत्नसे छिपा रखना। पुण्यका कीर्त्तन करनेसे वह भस्ममें आहुतिकी तरह व्यर्थ होता है। हे अनघ! निश्चय तुमने विश्वनाथ द्वारा प्रेरित हो यह प्रासादादि निर्म्माण किया है, सो मैं जानता हूं। हे महीपते! वृद्धकालेश्वर नामक लिङ्ग अनादि हैं, सो जानो, किन्तु तुम इसके निमित्त हो। इन वृद्धकालेश्वर लिङ्गके दर्शन, स्पर्शन, पूजन और प्रणामसे सब वाञ्छित प्राप्त होते हैं। कालोदक नामक कूप जरा और व्याधिनाशक है। इसका जल पान करनेसे माताका स्तन नहीं पान करना होता। इस कूपजलमें स्नान और इन लिङ्गकी पूजा करनेसे नर एक वर्षमें मनोभिलषित सिद्धि लाभ करता है। कालदमोदक पान करनेसे कुष्ट, विस्फोटक, रक्ता नामक रोग, विचर्चिका

और कफपीड़ा नहीं रहती। अग्निमान्द्य, शूल, मेह, प्रवाहिका मूत्रकृच्छ्र, पामा, भूतज्वर और विषमज्वर इस कूपोदकके सेवनसे शीघ्र उपशान्त होता है। इस कूपोदक पानसे तुम्हारे सामने ही मेरा ज्वरा और पलित क्षणकालमें नष्ट हुआ है और मैं तरुण हुआ हूं। वृद्धकालेश्वर लिङ्गकी सेवा करनेसे दरिद्रता नहीं आती; उपसर्ग रोग, पाप और पाप जन्यफल नहीं होता। वाराणसीमें कृत्तिवासके उत्तरमें वृद्ध कालेश्वर लिङ्गका सिद्धिलाभार्थिगण यत्न सहित दर्शन करेंगे।" यह बात कहकर तपोधन, सपत्नीक महाराजका हाथ धरकर उस लिङ्गमें लयको प्राप्त होंगे। "महाकाल, महाकाल, महाकाल" कीर्त्तन करनेसे मनुष्य शत प्रकार पापसे मुक्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। नारायण दर्शनसे वैकुण्ठमें बहुत तरह भोग लाभ करके तुम्हारी इस प्रकार मुक्ति होगी। सेवावरुणिने कहा, हे लोपामुद्रे! उन ब्राह्मणने मायापुरीमें प्राणत्यागजनित पुण्यबलसे मनोरम भोगको प्राप्त हो कर वैकुण्ठसे नन्दीवर्द्धन पत्तनमें आगमनकर पार्थिव सुखसमूह अनुभव करते सुन्दर पुत्र उत्पादन किया। फिर उसपर राजनिक्षेप कर वाराणसी नगरीमें जा विश्वेश्वरकी आराधना कर मुक्तिपदको प्राप्त हुए। शिवशर्म्मा ब्राह्मणका यह पुण्यतम आख्यान सुननेसे पाप विनिर्मुक्त हो उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त होता है।

चतुर्विंश अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

पञ्चविंश अध्याय।

अगस्त्यका कार्त्तिकेयदर्शन।

व्यासने कहा, हे सूत! सुनो, मैं कुम्भसम्भव अगस्त्यकी कथा कीर्त्तन करता हूं, श्रवण करनेसे मनुष्य रजसे रहित और ज्ञानभाजन होता है। सपत्नीक अगस्त्यने श्रीपर्व्वत प्रदक्षिणा करके महत स्कन्दवन देखा। यह वन सदा सब ऋतुमें कुसुमसे सुशोभित, सरस फलयुक्त पादपसे परिपूर्ण, सुसेव्य कन्दमूलसे अलङ्कृत, उत्कृष्ट वल्कलयुक्त वृक्षपरिवृत, विनीतश्वापदसङ्कुल, हरित और पल्लवसमन्वित, स्वच्छसलिल, और गम्भीर सरसीसमन्वित सम्पूर्णभूमिका सार स्वरूप, नाना पक्षिनाद निनादित, नानामुनिगणका आवासस्थान मानो तपस्याका सङ्केतनिलय और सम्पत्तिका एक मात्र स्थान है। उस स्थानमें स्वर्णगिरिसन्निभ लोहित नामका एक पर्व्वत है। इस पर्व्वतका कन्दर, प्रस्रवण, सानु और शिखर अति रमणीय है; मानो कैलासपर्व्वतका एक देश नाना आश्चर्ययुक्त होकर इसी कर्म्मभूमिमें तपस्या करनेको आया है। मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने उस पर्व्वतपर साक्षात् षड़ानन कार्त्तिकेयका

दर्श नपाया। उस समय महातपाः कुम्भसम्भव, पत्नीके सहित दण्डवत भूमिमें प्रणाम करके वेदसम्भव सूक्त द्वारा पार्व्वतीनन्दनका स्तव करने लगे। अगस्त्यने कहा, देवसमूहवन्दित पादकमल, सुधाकर सदृश आनन्दकर, गौरीके हृदयनन्दन, अमित विक्रम षड़ाननको नमस्कार है। तुम प्रणतगणके दुःखनाशक, समस्त मनोरथके सम्पादक, परवञ्चकगणके रथके विनाशक, तारकासुरके हन्ता, तुमको नमस्कार है। तुम मूर्त्तामूर्त्त पञ्चभूतस्वरूप, सहस्रमूर्त्ति सत्त्वरजस्तमोगुणात्मक, अथवा गुणसे प्रधान और शिखिवाहन, तुमको नमस्कार है। तुम वेदविद्गणके श्रेष्ठ, दिगम्बर, आकाशसंस्थित, हिरण्यवर्ण, हिरण्यबाहु, हिरण्य और हिरण्यरेता स्वरूप हो, तुमको नमस्कार है। तुम तपस्यास्वरूप, तपोधन तपफलके प्रतिपादक, सर्व्वदा कुमार, कामजेता और ऐश्वर्य्यविरागी हो, तुमको नमस्कार है। तुम शरजन्मा, तुम्हारी दन्तपंक्ति प्रभात सूर्य्यके न्याय अरुणवर्ण है, बालक होनेपर भी तुम्हारा पराक्रम बालकयोग्य नहीं, तुम षड़मातुर और अनातुर हो, तुमको नमस्कार है। तुम मीढ़ुष्टम, उत्तरमीढ़ु, गणपति और गण हो, तुमको नमस्कार है। तुम जन्मजरातिग, विशाख और शक्तिपाणि हो, तुमको नमस्कार है तुम सबके नायके कुमार, क्रौञ्चारि, तारकविनाशन हो, हे स्वाहेय! गाङ्गेय! कार्त्तिकेय! शैवेय! तुमको नमस्कार है। 'नमोनमः' ऐसा कहते हुए पूर्व्वोक्त प्रकारसे कार्त्तिकेयका स्तवकर अगस्त्यने दो तीन बार प्रदक्षिणा की। कार्त्तिकने कहा, "हे मुनीन्द्र, उपवेशन करो" यह कहकर पश्चात् फिर कहा, हे देवगणके सहाय कुम्भज मुने! तुम्हारी कुशल तो है? तुम इस स्थानमें आये हो, मैंने जाना। अविमुक्त महाक्षेत्रकी क्या पूछूं? वह क्षेत्र स्वयं महादेव कर्त्तृक रचित है, उसका निश्चय मङ्गल है। जिस स्थानमें आयुःक्षय होनेसे साक्षात् विरूपाक्ष, मुक्तिदाता हैं; मैंने भूर्लोक, भूवर्लोक, स्वर्लोक, पाताल वा उर्द्ध लोकमें सदृश अमल क्षेत्र नहीं देखा। हे मुने! मैं उस अविमुक्त क्षेत्रकी प्राप्तिके निमित्त एकचर होकर तपस्या करता हूं, किन्तु अभीतक मेरा मनोरथ सफल नहीं हुआ। पुण्य कर्म्म, दान जप और विविध यज्ञ द्वारा वह क्षेत्र नहीं मिलता, किन्तु एकमात्र महादेवके अनुग्रहसे मिल सकता है। हे मुने! सुदुर्लभ काशीवास ईश्वरके अनुग्रहसे ही सुलभ होता है कोटि कोटि सुकृत द्वारा नहीं होता। वह काशी विधाताकी सृष्टिसे भिन्न अन्य एक अनिर्व्वचनीय सृष्टि है। स्वयं ईश्वर भी उस क्षेत्रके गुण कहनेमें असमर्थ हैं। मेरा क्या ही ज्ञानका दौर्बल्य है! भाग्यकी क्या ही अल्पता है! मोहका क्या ही माहात्म्य है! जो

काशीकी सेवा नहीं करता हूं। नित्य ही शरीर और इन्द्रिय जीर्ण होती हैं, मृत्युरूप मृगयूकर्तृक आयुरूप मृग लक्षीकृत होता है। सम्पद्की आपद्युक्त, कायको अपायग्रस्त और आयुको चपलासदृश चञ्चल जानकर काशीका आश्रय करेंगे। जितने दिनतक आयुका अन्त न हो, उतने दिन काशी त्याग न करेंगे; मृत्यु, कलापरिमित समयकी भी संख्या करनेमें विस्मृत न होंगी। व्याधि सम्पूर्ण जराके निकट निक्षेप करके अन्तान्त पीड़ा देती है। देह तथापि नाना विषयकी चेष्टा करती है। किन्तु काशीसेवा नहीं करती है। तीर्थस्नान, जप और परोपकार वाक्य द्वारा अर्थ व्यतिरेक भी धर्म होता है। धर्मसे अर्थ स्वयं उपस्थित होता है। अर्थोपार्ज्जनोपाय व्यतीत भी धर्मसे निश्चय अर्थ होता है, अतएव अर्थ चिन्ता त्यागकर एकमात्र धर्म हीका आश्रय लेंगे। धर्मसे अर्थ, अर्थसे काम कामसे सर्व्व सुखका उदय होता है। अधिक क्या धर्मसे स्वर्ग भी सुलभ है; केवल एकमात्र काशी ही दुर्लभ है। महादेवने सर्व्वशास्त्रार्थ निर्णय करके उपायत्रयकी पार्व्वतीके समक्ष साक्षात् निर्व्वाणका कारण कहा है। प्रथमोपाय पाशुपतयोग, द्वितीय प्रयागतीर्थ, तृतीय आयासशून्य अविमुक्त क्षेत्र है। श्रीशैल, हिमशैल, नाना आयतन, त्रिदण्डधारण, सर्व्वकर्म्मोंका सन्यास, नानाप्रकार तपस्या, नियम, यम, नदीसङ्गम, बहु अरण्य, इत्यादि मानसकार्थ्य, भूमिसम्बन्धी धारातीर्थादि, उपरादि नव तीर्थ, पीठ सकल, अविच्छिन्न वेदपाठ, मन्त्रजप, अग्निमें होम, बहुदान, नानाक्रतु, देवतोपासना, त्रिरात्रोपवास, पञ्चरात्रोपवास, आत्मानात्मविवेक, मुक्ति निमित्त कथित विष्णुकी आराधना, मोक्षप्रद अयोध्यादिपुरी, यह सभी काशीप्राप्तिकर है। जन्तु, काशीप्राप्त होने हीसे मुक्त होता है, और किसी स्थानमें नहीं होता। अतएव उस अविमुक्त क्षेत्र पवित्र, मुक्तिकारी और ब्रह्माण्डमण्डलमें विश्वेश्वरकी एक ही प्रिय है। उस क्षेत्रसे आनेकी वजहसे ही तुमसे कुशल प्रश्न करता हूं। हे सुव्रत! आओ आओ तुम्हारा गात्र स्पर्श करूं। मैं काशीसे आई हुई वायु स्पर्शकी भी इच्छा करता हूं; तुम उसी काशीसे आते हो, तुम्हारे स्पर्शकी क्या बात कहें! जो नियतेन्द्रिय हो काशीमें त्रिरात्रि भी वास करें, उनका चरणरेणु स्पर्श करनेसे भी पवित्रता हो सकती है। तुम तो उसी काशीमें वास करके पुण्यसमूह सञ्चय करते हो। उत्तरवाहिणी गङ्गामें स्नान करते करते तुम्हारा मूर्द्धजसमूह पिङ्गलवर्ण हुआ है। हे अगस्त्य! उस काशीमें ईश्वरसन्निधिमें तुम्हारा जो कुण्ड है, उसमें स्नान, उसका जल पीनेसे, उसी जलमें तर्पणादि तीर्थोदककार्य्य श्रद्धाके सहित श्राद्धविधानसे पितृग-

णकी पूजा करनेसे मनुष्य कृतकृत्य होता है, और काशीका फल लाभ करता है। स्कन्द यह बात कहकर कुम्भोद्भवके सर्व्वगात्रको स्पर्शकर सुधासरोवरजलमें अवगाहन-जनित सुखको प्राप्त हुए; नेत्र मूंदकर 'जय विश्वेश्वर' कहकर स्थाणुकी न्याय निश्चल हो कुछ क्षण ध्यान करने लगे। अनन्तर कार्त्तिकके ध्यान भङ्ग कर-ने उनका मन और मुख सुप्रसन्न होने-पर अगस्त्यने बातका समय समझकर गुहसे पूछा हे स्वामिन् षड़ानन! भगवान् महादेवने भगवती पार्व्वतीसे वाराणसी-का जो माहात्म्य कहा था, तुमने पार्व्वतीकी गोदमें बैठकर सुना है, वह कीर्त्तन करो; उस क्षेत्रकी महिमा श्रवण करनेको मेरी अत्यन्त रुचि होती है। कार्त्तिकने कहा, हे मैत्रावरुणि! भगवान्ने मेरी मातासे अविमुक्त क्षेत्रकी जो महिमा कीर्त्तन की है, मैंने माताके उत्सङ्गमें अवस्थान-कर जो श्रवण किया है, वह कहता हूं। हे अनघ! तुम उसे सुनो। अविमुक्त क्षेत्र परम गुह्य, उसके सिद्धि सन्नि-हित है; जिसमें साक्षात् विभु अवस्थान करते हैं। वह क्षेत्र भूलोक संलग्न नहीं; —अन्तरीक्ष गत है। अयोगिगण उसे देख नहीं सकते, योगिगण देखते हैं। हे विप्र! जो संयतात्मा और समाहित-चित्त हो उस क्षेत्रमें वास करते हैं, वह त्रिकाल भोजन करनेपर भी वायुभक्ष ऋ-षिके तुल्य हैं। जो निमेष मात्र भी अवि-मुक्त क्षेत्रमें ब्रह्मचर्य्य अवलम्बनपूर्व्वक वास करते, उन्हें महत्तपः अनुष्ठान करनेका फल होता है। जो लघु आहार और जिते-न्द्रिय होकर वहां एक मास वास करते, उन्हें समस्त पाशुपत व्रतके आचरण कर-नेका फल होता है। क्रोध और इन्द्रिय जय करके स्वधनसे शरीर शोषणपूर्व्वक परापवादरहित और कुछ दान करते हुए एक वर्ष काशीमें वास करनेपर, और जगत्में सहस्र वर्ष तपस्या करनेसे जो फल होता है, वही फल पाता है। जो क्षेत्रमाहात्म्यज्ञ हो यावज्जीवन वास करते हैं, वह जन्ममृत्युभयरहित होकर परम गति लाभ करते हैं। अन्य स्थानमें शत वर्ष योगाभ्यास करनेपर भी जो गति लाभ नहीं की जाती, इस स्थानमें ईश्वरप्रसादसे हेलासे वही गति प्राप्त होती है। ब्रह्मघाती मनुष्य भी यदि दैवात् वाराणसी पुरीको जावे, तो उस क्षेत्रके माहात्म्यसे उसकी उस ब्रह्महत्या पापसे निवृत्ति होती है। देहपतन पर्य्यन्त जो वाराणसी त्याग नहीं करते, ब्रह्मह-त्यासे उनके कोई प्रकृतिका भी परिवर्त्तन नहीं होता। जो अनन्यचित्त हो उस क्षेत्रको त्याग नहीं करते, वह जरा, मृत्यु और सुदुःसह गर्भवाससे छूट जाते हैं। श्रीमान् मनुष्य यदि पृथ्वीमें पुनर्जन्मकी इच्छा न करे, तो देवर्षि सेवित अविमुक्त क्षेत्रको

न छोड़े। संसारभयमोचन अविमुक्त और विश्वेश्वरको पाकर न छोड़नेसे पुनर्जन्म नहीं होता। सहस्र सहस्र पाप करके यहांपर पिशाच होना भी अच्छा, शत शत यज्ञ करके काशी व्यतीत स्वर्ग भी अच्छा नहीं। मनुष्यके अन्तकालमें, जब मर्म भिद्यमान होता है और वात द्वारा तुद्यमान होता है, तब स्मृति विलुप्त होती है। उस उत्क्रान्ति कालमें स्वयं विश्वेश्वर साक्षात् होकर तारकब्रह्म उपदेश करते हैं, जिससे मनुष्य तन्मय होता है। मनुष्यता अनित्य और बहुपापसङ्कुल है, यह जानकर संसार-भय-नाशक अविमुक्त धामका आश्रय करेंगे। जो विघ्न द्वारा आलोड़ित होनेपर भी वाराणसी नहीं छोड़ते, वह मुक्तिको प्राप्त होकर दुःखान्त पाते हैं जो काशी महापाप-समूह नाशिनी, पुण्योपचयकारिणी और भोग या मुक्तिदायिनी है, कौन बुद्धिमान उस काशीका आश्रय न करेंगे? यह जान मेधावी मनुष्य अविमुक्तको न छोड़ेंगे; इसलिये, शिव अविमुक्त क्षेत्रके प्रसादसे मुक्ति होती है। सहस्रवदन अनन्तदेव भी जिस माहात्म्यके कहनेमें असमर्थ हैं; मैं छः मुखसे अविमुक्त क्षेत्रके उस माहात्म्यको कैसे कह सकता हूं?

पञ्चविंश अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥

षड्विंश अध्याय।

मणिकर्णिका वृत्तान्त।

अगस्त्यने कहा, हे भगवन् स्कन्द! यदि प्रसन्न हुए हो और मुझपर अनुत्तमा प्रीति हो तो जो मेरे हृदयमें अवस्थित है, वह कीर्त्तन करिये। किस समयसे अविमुक्त क्षेत्रने भूतलमें अत्यन्त प्रसिद्धि लाभ की है और क्योंकर वह मोक्षद है? क्यों इस त्रिलोकपूज्य तीर्थको मणिकर्णिका कहते हैं? यहां क्या पहले सुरधुनी नहीं थी? इस अविमुक्त क्षेत्रका नाम वाराणसी, काशी, रुद्रावास, और आनन्द-कानन क्यों हुआ? हे शिखिध्वज! क्यों यह महाश्मशान नामसे विख्यात है? मुझे यह सब सुननेकी इच्छा है, आप मेरे सन्देहका अपनोदन करिये। कार्त्तिकेयने कहा, हे कुम्भयोने! तुमने जो प्रश्न किया, उस प्रश्नका भार अतुलनीय है; अम्बिकाने महादेवसे यही प्रश्न किया था। जगन्माता पार्व्वतीसे देवदेवने जो कहा था, वह तुमसे कहता हूं। महाप्रलयके समय स्थावर जङ्गम नष्ट होनेपर सूर्य्य, ग्रह और तारकाशून्य समस्त ही तमोमय था। उस समय चन्द्र, अहोरात्र, अग्नि, भूतल नहीं था। सभी अप्रतर्क्य, विपतशून्य, अन्य तेजोविवर्ज्जित था। उस समय द्रष्टा, श्रोता, स्प्रष्टा, रूप, शब्द और स्पृश्य कोई वस्तु भी नहीं थी। गन्ध,

रूप, रस और दिक्सुख कुछ भी न रहा। इस तरह ब्रह्मविद्यापनेय घोर आवरणात्मक अन्धकार होनेपर वही "तत्सत् ब्रह्म" जो श्रुति द्वारा अद्वितीय एक प्रतिपादित होता है; जो मनमें दिखाई नहीं देता, वाक्यका विषय नहीं, नामरूपवर्णशून्य है; न स्थूल है, न कृश; न ऋस्व है, न दीर्घ; न लघु है, न गुरु; जिसको उपचय और अपचय नहीं है; देव भी चकितभावसे जिसको "अस्ति" कहकर अभिधान करते हैं; जो सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्द और श्रेष्ठतेजः है; जो अप्रमेय अनाधार, अविकार, आकृतिशून्य, निर्गुण, योगिगम्य, सर्व्वव्यापी, एक कारण स्वरूप, विकल्परहित; आरम्भशून्य, निरामय और उपद्रवविवर्ज्जित है; संज्ञाशून्य जिस ब्रह्मकी यह सब संज्ञा विकल्पित होती है; वही एकचर द्वितीय इच्छा था। उन मूर्त्तिशून्य ब्रह्मने लीला द्वारा अपनी मूर्त्तिकी कल्पना की। वह सर्व्वग अव्यय परब्रह्म, सर्व्वैश्वर्य्यगुणयुक्ता सर्व्वज्ञानमयी, मङ्गलस्वरूपा, सर्व्वगामिनी, सर्व्वस्वरूपा, सर्व्वदर्शिनी, सर्व्वकारिणी, सबकी एकमात्र वन्दनीया, सबकी आदिभूता, सर्व्वदायिनी, सबकी सम्यक्चेष्टास्वरूपा, शुद्धरूपिणी, ऐश्वरी मूर्त्ति कल्पना कर अन्तर्हित हुए। हे प्रिये! मैं वही अमूर्त्त परब्रह्मकी मूर्त्ति हूं; नये और पुराने बुधगण मुझे ईश्वर कहते हैं। फिर मैंने अकेले स्वच्छन्दसे विहार करते करते अपने शरीरसे अपने शरीरकी अव्यभिचारिणी मूर्त्तिकी सृष्टि की। प्रधान, प्रकृति, गुणवती, श्रेष्ठा, माया, बुद्धितत्त्वकी जननी, विकृतिवर्ज्जिता तुम्हीं वह मूर्त्ति हो। कालस्वरूप आद्य पुरुष मैं हूं, और शक्तिरूपिणी तुम्हारे सहित युगपत् यह क्षेत्र मैं निर्म्माण किया है। कार्त्तिकने कहा, वही शक्ति प्रकृति हैं, वह परमेश्वर ही पुरुष हैं, हे कुम्भयोने! विहारपरायण परमानन्दस्वरूप शिव और शिवा रचित स्वपादतलनिर्मित परमानन्दरूप, पञ्चक्रोश परिमाण यह क्षेत्र, प्रलयकालमें भी कभी विमुक्त नहीं होगा, इसलिये ही इसे अविमुक्त कहते हैं। जिस समय भूमिवलय नहीं थी, जिस समय जलकी उत्पत्ति नहीं हुई थी, उस समय ईश्वरने विहारकी निमित्त यह क्षेत्र निर्म्माण किया था। यह कभी भी नास्तिकसे न कहना, कुम्भज! इस क्षेत्रका रहस्य कोई नहीं जानता। धर्म्मदर्शी, श्रद्धालु, विनीत, त्रिकालज्ञ, शिवभक्त, शान्त और मुमुक्षुसे कहना उचित है। उसी अवधिसे यह अविमुक्त कहा जाता है। यह शिवा और शिवका पर्य्यङ्करूप और निरन्तर सुखास्पद है, मूढ़बुद्धिगण जब शिव और शिवाके अभावकी कल्पना करते, तभी निर्म्माणकारी इस क्षेत्रके अभावकी कल्पना करेंगे। योगादिसे

अभिन्न होनेपर भी महेश्वरकी आराधना और काशीमें न जानेसे कभी भी निर्व्वाण लाभ करनेमें सक्षम नहीं होता। यह क्षेत्र मोक्षरूप आनन्दका हेतु है; इसलिये हो पिनाकीने इसका नाम आनन्दकानन और फिर अविमुक्त रखा है। अथवा अविमुक्त नामसे इस क्षेत्रमें सब तरहके आनन्दकान्दका बीज और अङ्कुर होता है, इसलिये इसका नाम आनन्दकानन है! हे अगस्त्य! इस तरह अविमुक्त क्षेत्र आनन्दकानन नामसे विख्यात है। अब मणिकर्णिका जिस तरह हुआ है, वह कहता हूं। उस आनन्दकाननमें रममाण शिव और शिवाको कुछ और सृजन करनेकी इच्छा हुई। और सोचा, कि उसपर गुरुभार निक्षेपकर हम स्वच्छन्दचारी हो केवल काशी-सुतगणका निर्व्वाण करेंगे। वह दृष्टवस्तु सर्व्वैश्वरनिधि हो सबका बको सृजन, पालन और अन्तमें संहार करेगी। चिन्तातरङ्गदोलित, सत्त्वरूप रत्नपूर्ण, तमोरूप ग्राहसङ्कुल, रजोरूप विद्रुममण्डित चित्तसमुद्र स्थिरकर उसके प्रसादसे आनन्दकाननमें सुखसे रहेंगे। चञ्चलचित्त चिन्तातुर व्यक्तिको सुख कहां? जगतके धाता विभु धूर्ज्जटिने चित्स्वरूप जगद्धात्रीसहित ऐसा निश्चयकर सुधास्रावी नयन अपने वामअङ्गमें व्यापारित किया। फिर एक त्रैलोक्यसुन्दर पुरुष आविर्भूत हुए। वह पुरुष शान्त सत्त्वगुणमें उद्रिक्त, गाम्भिर्य्यमें समुद्रविजयी, क्षमायुक्त, अनुपम, इन्द्रनीलद्युति श्रीमान् पुण्डरीकनयन थे। सुवर्णवर्ण सुश्री वस्त्रयुगलपरिधायी, प्रचण्ड बाहुद्वय शोभित और उनकी नाभिह्रदस्थित कोशेशयसे उत्तम आमोद विकीर्ण होता था; सब गुणोंके एकमात्र आवास, सब कलाके एकमात्र निधि, एकमात्र सर्व्वोत्तम 'पुरुषोत्तम' शब्द जिनमें अनारोपित नाम है। फिर महामहिमभूषण, उन महापुरुषको देखकर महादेवने कहा, हे अच्युत! तुम महाविष्णु हो। वेद तुम्हारा निश्वास है, उससे सभी अवगत होंगे। देवदृष्ट मार्ग द्वारा यथोचित सब सम्पादन करो। महेश्वर बुद्धितत्त्वस्वरूप उन पुरुषसे यह कहकर शिवासहित आनन्दकाननमें गये। फिर भगवान् विष्णुने वह आज्ञा मस्तकपर रख कुछ समयतक ध्यानपर हो तपस्यामें हो मन अभिनिविष्ट किया। उसी स्थानमें चक्र द्वारा रमणीय पुष्करिणी खोदकर अपने अङ्गनिर्गत स्वेदसलिल द्वारा उसको भरा। उस चक्रपुष्करिणीके किनारे स्थाणुसदृश शरीर हो पञ्चाशत् सहस्र वर्षतक उग्र तपस्या की। फिर पार्व्वती सहित महादेवने तपःप्रभावसे प्रज्वलित निश्चल निमीलितनेत्र हृषिकेशका मस्तक आन्दोलनकर कहा, तपस्याका कैसा महत्त्व है? चित्तमें कैसा धैर्य्य है? क्या आश्चर्य्य है, बिना ईंधनके निरन्तर अग्नि जलती है। हे महाविष्णो! और तपस्याका प्रयोजन

नहीं है। हे सत्तम! वर प्रार्थना करो। चतुर्भुज इस बातको महादेवका वाक्य जान नयनपद्म खोलकर उठे। श्रीविष्णुने कहा, हे देवेश! महेश्वर! यदि प्रसन्न हुए, तो यह वर दो, जिसमें भव नीके साथ तुम्हें सदा देखूं। हे शशिशेखर! जिसमें सब काममें सब जगहमें तुम्हें आगे विचरण करते देखूं, मेरा चित्त भ्रमर तुम्हारे चरणपद्मके मकरन्दमधुपानमें उत्सुक हो भ्रान्ति त्यागकर निश्चल हो जाय। श्रीशिवने कहा, हे हृषीकेश! हे जनार्दन! तुमने जो कुछ कहा, वही हो, दूसरा और वर भी देता हूं। हे सुव्रत! सुनो! तुम्हारी तपस्याका महत्त्व देखकर अहिरूप कर्णाभरणयुक्त मस्तक जो आन्दोलन किया है, उसी आन्दोलनवश कानसे मणिखचित, रमणीय मणिकर्णिका पतित हुई है! अतएव शङ्खचक्रगदाधर! तुम्हारे चक्रसे खोदनेके हेतु पुष्करिणी तीर्थ कहकर विख्यात पवित्र तीर्थ 'मणिकर्णिका' हो! जिस समय हमारे कानसे मणिकर्णिका पतित हुई है, उसी समयसे इस लोकमें यह मणिकर्णिका नामसे विख्यात हो। श्रीविष्णुने कहा, हे पार्व्वतीप्रिय! तुम्हारे मुक्ताकुण्डलपतनसे यह तीर्थ, इस लोकमें सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ तीर्थ और मुक्तिक्षेत्र हो। इसलिये यह जगह परमज्योति विकाश पाती है; अतएव इसका और एक नाम काशी हो।

हे जगतके रक्षकारी शिव! मैं और एक वरकी प्रार्थना करता हूं, अविचारितरूपसे दान करिये, जरायुज अण्डज आदि चार तरहके भूतग्राममें आब्रह्मस्तम्ब पर्य्यन्त जितने जन्तु संज्ञक हैं, वह सभी काशीमें मुक्तिलाभ करें। हे शम्भो! मणिकर्णिकाभूषण! जो महाप्राज्ञ आयुको क्षणविनाशी, विपदकी विपुल, सम्पत्‌की अति भङ्गुर और मुक्तिको उसी उसी कामका परिणाम जानकर इस श्रेष्ठतीर्थमें सन्ध्या, स्नान, जप, होम, वेदाध्ययन, तर्पण, देवतापूजा, गो, भूमि, तिल, हिरण्य, अश्व, दीप, अन्न, अम्बर, भूषण और कन्यादान, अग्निष्टोमादि, सप्ततन्तु, व्रतोत्सर्ग, वृषोत्सर्ग लिङ्गादि स्थापन कर्म्म करेंगे, हे ईशान! आत्मघात प्रायोपवेशनके अतिरिक्त उनके और श्रद्धानुष्ठित शुभकर्म्म मुक्तिरूप सम्पदके हेतु हों। जो जैसे कर्म्म करके कालान्तरमें अनुशोचना और ख्यापन नहीं करते, तुम्हारी अनुग्रहसे उनका वह कर्म्म इस लोकमें अक्षय हो। जितने सब क्षेत्र हैं, जो होंगे और जो हुए हैं। हे सदाशिव! जैसे तुमसे उत्कृष्ट मङ्गल और कोई भी नहीं है, उसी तरह इस आनन्दकाननसे कोई भी क्षेत्र अधिक न हो। सांख्ययोग, आत्मावलोकन, व्रत तपस्या, दानके अतिरिक्त भी यह स्थान प्राणियोंकी श्रेय हो। मशक, मशक, कीट, पतङ्ग, तुरग, उरग, सभी पञ्चक्रोशी

काशीमें मृत होनेसे निर्व्वाणको प्राप्त हों। काशीनाम लेनेवालेका भी पाप क्षय हो। काशीनिवासी साधुओंमें वहां ही सत्ययुग, उत्तरायण और महोदय हो। हे त्रिलोचन! सदाशिव! जितने श्रुत्युक्त पवित्र क्षेत्र हैं, उन सबसे यह क्षेत्र अधिकतर हो। चार वेदके अध्ययनसे जो पुण्य होता है, काशीमें लाख गायत्री जपने हीसे वह पुण्य लाभ किया जाय। अष्टाङ्ग योगाभ्यास करनेसे जो पुण्य होता है, काशीसेवनसे उससे अधिक पुण्य हो। कृच्छ्र, चान्द्रायणादि करनेसे जो पुण्य होता है, आनन्दकाननमें मात्र एक उपवासकर वह पुण्य लाभ किया जाय। और जगह एक सौ वर्ष तपश्चरण करनेसे जो श्रेय हो, वह काशीमें एक वर्ष मात्र भूमिशय्याशयन व्रत करनेसे हो। दूसरी जगह आजन्म मौनव्रत करनेसे जो फल हो, वह काशीमें एक पक्ष अथवा एकाध सत्य बात बोलनेसे हो। दूसरी जगह सर्व्वस्व दान करनेसे, जो सुकृत उक्त हुआ है, काशीमें सहस्र ब्राह्मण भोजन करानेसे ही उसका अयुतगुण पुण्य हो। सब मुक्तिक्षेत्रकी सेवा करनेसे जो फल होता है, वह काशीमें पांच रात मणिकर्णिकी सेवा करनेसे ही हो! प्रयागस्नानसे जो मङ्गलप्रद पुण्य होता है, वह श्रद्धा सहित काशीका दर्शन करनेसे ही हो। अश्वमेध और राजसूय करनेसे जो पुण्य होता है, संयमविशिष्ट हो त्रिरात्र काशीवास करनेसे ही वह पुण्य प्राप्त हो जाय। सम्यक्‌रूपसे तुलापुरुष दान करनेसे जो पुण्य होता है, वह पुण्य श्रद्धाके साथ काशीका दर्शन करनेसे ही हो। देवदेव महादेवने विष्णुकी इस तरहकी वरप्रार्थना सुन प्रसन्नवदन हो कहा, "तथास्तु" हे महाबाहु विष्णो! तुम वेदोक्त विविध सृष्टि करो। पिताकी तरह सर्व्वभूतके पालक हो और विविध धर्म्म ध्वंसकारियोंका विध्वंस विधान करो। अधर्म्म-पथस्थितगणके नाश विषयमें हेतु मात्र हो; वह, तो अपने कर्म्म द्वारा ही निहत हैं। जैसे पक्का फल वृक्षसे विच्युत होता है, उसी तरह पापकारिगण स्वयं पतित होंगे। हे हरे! जो अपने तपोबलसे दर्पित हो तुम्हारी अवमानना करेंगे, उन लोगोंका मैं ही संहार करूंगा। जो उपपातकी या महापातकी हैं, वह काशीमें आकर पापमुक्त होंगे। इस पञ्चक्रोश-परिमित मेरे प्रिय क्षेत्रमें मेरी ही आज्ञा बलवती होगी; और किसीकी नहीं। हे सुनेत्रे पार्व्वती! मैंने फिर विष्णुसे कहा, कि त्रैलोक्य विभ्रमकारीमें अति उग्र तेजसे भ्रमण करते हुए अविमुक्तवासी पापकारी जन्तुगणका शासन करूंगा; हे विष्णो! उन लोगोंका शास्ता और कोई नहीं है। अत योजन दूर रहकर भी जो अविमुक्तको स्मरण करेंगे, वह बहुत पापपूर्ण होने-

पर भी उस पापसे बाधित न होंगी। दूर रहनेवाले पापी भी यदि मृत्युके समय मेरे प्रिय अविमुक्त क्षेत्रको स्मरण करेंगी, तो वह पापसमूहमुक्त हो स्वर्गलाभ करेंगी। काशीस्मरणपुण्यसे स्वर्गभ्रष्ट होनेपर भी पृथिवीमें राजा हो, अनेक तरहके भोग अनुभवकर उसी पुण्यसे ही अविमुक्त क्षेत्रको प्राप्त हो निर्व्वाणपद लाभ करेंगी। हे शुचिस्मिते! इन्द्रिय और मनका संयमकर अनेक कालतक इस स्थानमें वास करके यदि दैवयोगसे दूसरी जगह प्राणत्याग करे, तब भी वह स्वर्गसुख भोगकर क्षितिपतीश्वर हो दूसरी बार काशीको प्राप्त हो फिर मुक्तिलाभ करेगा। हे विष्णो! अविमुक्त क्षेत्रमें वास करनेवाले कितने पवित्र व्यक्ति मरनेके बाद ही निर्व्वाणनिमित्त होते हैं, किन्तु पापी कालभैरव यातनाके बाद मोक्षदायक होते हैं। विष्णुने कहा, हे देवेश! जो व्यक्ति इस क्षेत्रके यथार्थ माहात्म्यसे अवगत नहीं हैं और अश्रद्धाके साथ इस जगह मरें, तो उनकी कौन गति होती है? शिवने कहा, हे सुव्रत! जनार्द्दन! वह व्यक्ति जो यहांकी महिमा न जानता हो दूसरी जगह सुमहापाप कर और इसके तत्त्वज्ञानसे शून्य होकर भी यदि इस जगह पञ्चत्व लाभ करे, तो उसके लिये जो गति उद्दिष्ट हुई है, वह सुनो। पापी व्यक्ति जब पञ्चक्रोशी काशीमें प्रवेश करता है, तभी उसके पापकसमूह दूर हो जाते हैं; भीतर नहीं आ सकते। काशीके पर्य्यन्तचारी त्रिशूलपाशपाणिके भयसे पातकसमूहके बाहर अवस्थान करनेपर, प्रवेश मात्रसे ही सब पापसे मुक्त है, सुतरां अपाप हो मणिकर्णिकामें स्नान करनेसे उत्कृष्टतम पुण्य प्राप्त होता है, सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता, मणिकर्णिकमें एकबार स्नान करनेसे भी वही प्राप्त होता है। सब तीर्थोंमें स्नान और सब वस्तु दान करनेसे जो पुण्य होता है, मणिकर्णिकामें श्रद्धाके साथ मृत्तिका, गोमय, कुश, दूर्व्वा, अपामार्ग और दर्भादि द्वारा स्वशाखोक्त स्नानमन्त्र पाठ सहित स्नान करनेसे प्राप्त होता है। अश्रद्धाके साथ भी मणिकर्णिकामें यथाविधान स्नान करनेसे स्वर्गप्राप्तिकर श्रेष्ठ पुण्य प्राप्त होता है। श्रद्धाके साथ यथाविधान स्नान और तिल, वर्हिः; और यव द्वारा देवादिका तर्पण करनेसे सर्व्वयज्ञ फल लाभ होता है। श्रद्धाशून्य व्यक्ति यदि विधिवत् स्नान, देव ऋषि पितृतर्पण, जप और देवपूजा करे, तो उसे भी सर्व्वयज्ञ फल प्राप्त हो। हे शिवे! जितेन्द्रिय हो मौन अवलम्बन सहित स्नानकर विश्वेश्वर दर्शन करनेसे वह वाचंयम व्यक्ति सब व्रतोंका पुण्य लाभ करता है। स्नान, देवपूजा, जप, मलमूत्र त्याग, दन्तधावन और होमकार्य्यमें यत्नके साथ मौन अवलम्बन करेंगी। उत्तम उपचार द्वारा एकबार विश्वेश्वरकी पूजा कर-

नेसे यावज्जीवन शिवपूजाका फल प्राप्त होता है। अविमुक्त क्षेत्रमें न्यायोपार्जित थोड़ा धन दान करनेसे फिर वह कभी दरिद्र नहीं होता। बहुत धन रहनेपर भी जो अविमुक्तमें दान नहीं करता, वह मूढ़ मनुष्य निधन होकर दूसरी जगह सदा शोक करता है। जितने रमणीय रत्न, गो, गज, अश्व, अम्बर हैं, वह सभी अविमुक्तवासियोंके मङ्गलके निमित्त विधाता द्वारा कृत हुआ है। जो नर विश्वेश्वर-प्रीतिके लिये काशीमें धन या निधन करते हैं, वह सर्व्वधर्म्मवित् धन्य हैं। हे उमे! काशीपुरीमें वह जो लिङ्गरूपधर विश्वेश्वर देव हैं, वह साक्षात् मेरे श्रेयके आस्पद हैं। पञ्चक्रोश परिमित अविमुक्त क्षेत्र कहा गया है। उसमें विश्वेश्वर नामक जो लिङ्ग हैं, उन्हें ज्योतिर्लिङ्ग समझना। सूर्य्यदेव एक जगह रहनेपर भी जैसे सबलोग उन्हें सर्व्वत्र देखते हैं, काशीमें विश्वेश्वर भी उसी तरह हैं। दूसरी जगह नानाजन्मार्ज्जित निर्व्विघ्न योग द्वारा जो फल लाभ होता है, काशीमें प्राणत्याग करनेसे ही वह फल प्राप्त होता है। दूसरी जगह जितेन्द्रिय हो सब तरहकी तपस्यासे जो फल होता है, काशीमें एक रातमें ही वह लाभ होता है। जो नर क्षेत्र माहात्म्यसे अवगत नहीं और श्रद्धाशून्य हैं, वह भी किसी समय काशीमें आनेसे अपाप और वहां प्राणत्याग करनेसे मुक्त होता है। उग्र पापकर किसी समय काशी प्राप्त करके प्राण त्यागनेसे मेरे प्रसादसे मुक्ति प्राप्त करेगा। सिवा मेरी प्रसन्नताके कौन काशी प्राप्त करता है? हे विशालाक्षि! सिवा सूर्य्यके और दिनकृत् किसे कहते हैं? हे देवि! काशी प्राप्त न होनेसे कौन निरन्तर सुखी रहता है? इसके लिये ब्रह्मादि देवगण भी प्राकृत पाश द्वारा निरन्तर आवद्ध हैं। सत्त्व रजः तमः त्रिगुण, धर्म्म अर्थ कामादि प्रकृति महदहङ्कारादि चौबीस पाश द्वारा कण्ठ-सुदृढ़बद्ध मनुष्य काशीके सिवा क्योंकर मुक्त होंगे। योग नाना उपसर्गसङ्कुल है, तपस्या कष्टसाध्य है; अतएव योग और तपस्यासे भ्रष्ट होकर बार बार गर्भक्लेश सहकर काशीमें पाप करके भी यदि मरें, तब भी रुद्रपिशाच हो दूसरी बार मुक्तिलाभ करेंगे? पापकारिगण भी यदि दैवात् काशीमें मरें, तो उनका फिर नरकपतन नहीं होता। इसलिये, कि उनलोगोंका शास्ता मैं ही हूं। शरीर नाशकी अवश्यम्भाविता और गर्भकी दुःसह यातना सोच प्रभूत राज्य भी परित्याग करके काशीमें आश्रय लेंगे। सुदारुण यमदूतगण अतर्कित भावसे आकर पाशसे आवद्ध करके प्रहार करेंगे, ऐसा सोचकर शीघ्र काशीका आश्रय लेंगे। जिस जगह पापसे, यमसे और गर्भवाससे भय नहीं है, उस काशीमें कौन नहीं आश्रय लेंगे? आज, कल या परसों मरना

अवश्य ही है। अतएव जो समय मिले उसी समयमें काशी आश्रय विधेय है। मरनेके बाद जन्म और जन्मके बाद मरना है; अतएव जिस जगह मरनेसे फिर जन्म नहीं होता, पण्डितगण उसी काशीमें आश्रय लेंगे। पुत्र, क्षेत्र, कलत्र नामक विष्णुमाया त्यागकर भवमोचनकारिणी वाराणसीमें आश्रय लेंगे। कार्त्तिकने कहा, "मैं युवा हूं, मेरा मरना दूर है" ऐसा विचार न करेंगे; किन्तु "घण्टाभरणयुक्त महिषाधिरूढ़ यम मुझे लेने आते हैं" यह विचार जीर्णपर्णकुटीके सदृश गृह त्यागकर तपस्यादि उत्कट श्रम स्वीकार न करके काशीमें जावेंगे। व्यासने कहा, हे सूत! कार्त्तिकने अगस्त्यसे यह पापनाशिनी कथा कहकर फिर भी कहा था।

षड्विंश अध्याय समाप्त॥ २६॥

सप्तविंश अध्याय।

दशहरास्तोत्र।

स्कन्दने कहा, यह आनन्दकानन अविमुक्तक्षेत्र जिस प्रकार वाराणसी नामसे प्रथित हुआ, उस विषयमें शिवने जो कुछ कहा था, वही कहता हूं। शिवने विष्णुसे कहा था, हे त्रिलोकसुन्दर महाबाहु विष्णु! अविमुक्तक्षेत्रका वाराणसी नाम जिस प्रकारसे हुआ, वह सुनो। सूर्य्यवंशोद्भव महातेजा परमधार्म्मिक राजा भगीरथने, अश्वमेधीय अश्वरक्षणामें नियुक्त स्वीय पूर्व्वपुरुषगणको कपिल कोपानलसे दग्ध सुनकर, गङ्गा आराधनार्थ तपस्यामें कृतनिश्चय हो राज्यभार मन्त्रीके ऊपर विन्यस्त किया; फिर वह यशोराशि राजा, पितामहगणका उद्धार करनेके इच्छुक होकर पर्व्वतश्रेष्ठ हिमालयमें गये। हे विष्णो! ब्रह्मशापानल दग्ध और नितान्त दुर्गतिग्रस्त प्राणिगणको स्वर्गमें ले जानेको गङ्गाके सिवा और कौन समर्थ है? गङ्गा मेरी ही शिवस्वरूपिणी जलमयी मूर्त्ति हैं। परमा प्रकृति गङ्गा ही बहुब्रह्माण्डकी आधार हैं। गङ्गा शुद्धविद्यारूपा, शक्तित्रयसमन्विता, करुणात्मिका, आनन्दामृतरूपिणी और शुद्ध धर्म्मस्वरूपा हैं। मैं विश्वरक्षाके लिये परम ब्रह्मस्वरूपा इन जगन्माता गङ्गाको स्वीय लीलाक्रमसे धारण करता हूं। विष्णु! त्रैलोक्यमें जितने तीर्थ, जितने पुण्यक्षेत्र और सर्व्वलोकमें जितने धर्म्म हैं, दक्षिणायुक्त जितने सब यज्ञ हैं, जो तपस्या हैं, वह समस्त अङ्गसम्पन्न चतुर्व्वेद, हम तुम, ब्रह्मा, अन्य देवगण यावतीय पुरुषार्थ और विविध शक्ति, यह समस्त ही गङ्गामें सूक्ष्मरूपसे अवस्थित हैं। एक गङ्गामें स्नान करनेसे, सब तीर्थस्नानका फल, सर्व्वयज्ञानुष्ठानफल, और सर्व्वव्रताचरणका फल मिलता है। एक गङ्गास्नान करनेसे बहुतपश्चर्य्याफल, सर्व्वदानफल और योग-

नियमानुष्ठानका फल, मिलता है। गङ्गा-स्नायी लोग, सम्पूर्ण वर्ण, समस्त आश्रमी सर्व्ववेदज्ञ और सर्व्वशास्त्रार्थगामी, जनगणकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। मानसिक, वाचिक और कायिक विविध दोषसे दुष्टलोग, गङ्गादर्शनमात्र ही से पवित्र होते हैं, इसमें संशय नहीं है। सत्ययुगमें सर्व्वत्र तीर्थ, त्रेतायुगमें केवल पुष्कर तीर्थ, द्वापरमें कुरुक्षेत्र तीर्थ और कलिकालमें केवल गङ्गा ही तीर्थ हैं। हे हरे! पूर्व्व जन्मकी अभ्यासवासनाके वशसे, मेरे परमानुग्रहके बलसे गङ्गातीरमें वास होता है। सत्ययुगमें ध्यान ही मोक्षका कारण है, त्रेतायुगमें तपस्या ही मुक्तिका कारण है, द्वापरयुगमें ध्यान तपस्या उभय मुक्तिका कारण है और कलिकालमें केवल गङ्गा ही मोक्षका कारण हैं। जो लोग देहत्याग न होनेतक गङ्गातीर नहीं छोड़ते, वही वेदान्तवित्, वही योगी और वही सदा ब्रह्मचर्य्यव्रती हैं। कलियुगमें पापाक्रान्तहृदय, परद्रव्यासक्तचित्त अवैधाचार मनुष्यगणको बिना गङ्गाके गति नहीं है। "गङ्गा गङ्गा," इस प्रकार जप करनेसे, अलक्ष्मी, कालकर्णी, दुःस्वप्न और दुश्चिन्ता पास नहीं आती। विष्णो! सदा निखिल-भुवन-हितकारिणी गङ्गा, भावानुसारसे सर्व्वभूतको ऐहिक पारत्रिक फलदान करती हैं। हे हरे! यज्ञ, दान, तपस्या, योग जप, यम, नियमसे गङ्गासेवाके सहस्रांशके एकांशका फल भी नहीं होता। अष्टाङ्ग योगका प्रयोजन ही क्या है? तपस्यामें फल ही क्या है? यज्ञका ही क्या काम है? एकमात्र गङ्गातीरमें वास ही ब्रह्मज्ञानका कारण है। हे गोविन्द! गङ्गासे दूरस्थ लोग भी यदि गङ्गामाहात्म्याभिज्ञ ही क्यों न हों, गङ्गाभक्ति रहनेसे अयोग्य लोगोंपर भी गङ्गा प्रसन्न होती हैं। श्रद्धा ही परम सूक्ष्मधर्म्म, श्रद्धा ही ज्ञान, श्रद्धा ही परम तपस्या, श्रद्धा ही स्वर्ग और मोक्ष है; गङ्गा श्रद्धाबलसे ही प्रसन्न होती हैं। अज्ञान रागलोभादि द्वारा विमोहित-चित्त मनुष्यगणको धर्म्मके प्रति, विशेषतः गङ्गाके प्रति श्रद्धा नहीं होती। बहिः-स्थित जल जिस प्रकार नारियलके अभ्यन्तरमें रहता है, उसी प्रकार ब्रह्माण्डके बाह्यस्थित परमब्रह्म स्वरूप जल ही जाह्नवी है। गङ्गासन्निधिकी अपेक्षा परम-लाभ और कहीं भी नहीं है, अतएव गङ्गा उपासना ही कर्त्तव्य है; गङ्गा ही परम पुरुष हैं। हे हरे! पण्डित, गुणवान् और दानशील होनेपर भी शक्तिसत्त्वसे यदि गङ्गास्नान न करें, तो उनका जन्म विफल है। जो लोग कलिकालमें गङ्गाका भजन नहीं करते, उनका कुल, विद्या, यज्ञ, तपस्या और दानादि सब ही विफल है। विधिपूर्व्वक गङ्गाजलमें स्नान पूजा करनेसे जैसा फल होता है, गुणवान् पात्रको अर्चनासे वैसा फल

नहीं होता। फिर तेजःस्वरूप अग्नि गङ्गाके गर्भसे हैं, यह मेरे वीर्य्यमें एकान्त संहता हैं; सर्व्वदोषोंकी दाहिका और सर्व्वपापविनाशिनी हैं। गङ्गास्मरणमात्र होसे पापराशिपिञ्जर, वज्राहत पर्व्वतके सदृश शतधा विदीर्ण होता है। जो अकेले गङ्गामें गमन करता और भक्तिपूर्व्वक जो उनका अनुमोदन करता है, यह उभय व्यक्तिका ही फल समान हैं; इस विषयमें भक्ति ही कारण है। गमन, अवस्थान, जप, ध्यान, भोजन, जागरण, श्वासपरित्याग, वाक्यप्रयोग, सब समयमें ही जो मनुष्य गङ्गास्मरण करते, वह भव-बन्धनमुक्त होते हैं। जो लोग, पितृगणोद्देशसे गुड़, घृत, तिलमधुयुक्त पायस भक्तिभावसे गङ्गाजलमें निक्षेप करते हैं, हे हरे! उनके पितृगण, उस कार्य्यफलसे ही शतवर्ष तृप्त रहते और वह परितुष्ट होकर कर्म्मकर्त्ताकी विविध कामनाको पूर्ण करते हैं। जैसे एक लिङ्गको पूजा करनेसे निखिल जगतकी पूजा होती है, उसी प्रकार एक गङ्गास्नान करनेसे सर्व्वतीर्थसेवाका फल प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य गङ्गास्नान करके प्रत्यह पूजा करते, वह एक जन्ममें ही निश्चय परमामुक्तिको प्राप्त होते हैं। अग्निहोत्र, यज्ञ, व्रत, दान और तपस्या,—गंगातीरमें लिंगपूजाके कोटि भागके एक भाग समान भी नहीं है। गंगागमन निश्चय कर गृहमें तीर्थगमननिमित्तक श्राद्ध कर अवस्थित होनेपर, गंगागमनमें सम्यक् सङ्कल्प करनेसे ही पूर्व्वपुरुषगण हृष्ट होते हैं। पापगण, 'अब कहां जायगी' कहकर रोदन करते और शीघ्र लोभ मोहादि सहित यह कहकर बार बार मन्त्रणा करते हैं, कि जिसमें एक व्यक्ति भी गंगाको न जाने पावे, ऐसा विघ्न करेंगे; गंगामें तो यह पहुंचते ही हमलोगोंका उच्छेदसाधन करेंगे। गंगास्नानके लिये गृहसे निष्क्रान्त होनेपर, पापराशि निराश होकर प्रतिपदक्षेपमें, क्रमशः उसके शरीरसे निर्गत होती है। हे हरे! पुण्यवान् मनुष्य, पूर्व्वजन्मार्ज्जित पुण्यबलसे ही लोभादि परित्यागकर सर्व्वविघ्नराशि दूरकर गंगाके सन्निहित होनेमें समर्थ होता है। वाणिज्य, दास्य, मूल्यग्रहण या अन्य किसी प्रसंगसे कामासक्त व्यक्ति भी यदि गंगास्नान करें तो वह भी स्वर्गमें जावेंगे। अनिच्छाक्रमसे स्पर्श करनेपर अग्नि जिस प्रकार दाह करती है, उसी तरह अनिच्छाक्रमसे स्नान करनेपर भी गंगा पाप नष्ट करती हैं। जबतक गंगा स्नान नहीं किया जाता, तबतक संसारमें भ्रमना पड़ता है, गंगास्नान करनेपर, फिरको और संसारकष्ट अनुभव नहीं करना पड़ता। जो व्यक्ति दृढविश्वासपूर्व्वक गंगाजलमें स्नान करते हैं, वह मनुष्य चर्म्मावृत देवता हैं इसमें संशय नहीं।

गंगास्नानार्थ, वहिर्गत होनेपर यदि पथमें मृत्यु हो, तो वह व्यक्ति भी निःसंशय गंगास्नानका फल प्राप्त करता है। जो गङ्गा-माहात्म्य पढ़ते या सुनते हैं, वह भी अशेष महापातकसे मुक्त होते हैं, इसमें संशय नहीं। हे विप्रो! दुर्बुद्धि, दुराचार, कुतार्किक और संशयात्मा मानवगण, मोहवशतः गंगाको दूसरी नदीके सदृश विवेचना करते हैं। पूर्व्वजन्मकृत दान, तपस्या, व्रत नियमके प्रभावसे, मानवगणकी इस जन्ममें गंगाके प्रति भक्ति होती है। ब्रह्मा, गंगा-भक्तोंके लिये, इन्द्रादिलोकमें रमणीयभोगसम्पन्न हर्म्यराजि निर्म्माण कर रखते हैं। अणिमादि सिद्धिसमूह, सिद्धिके सम्पूर्ण उपाय, स्पर्शमणि प्रभृति बहुतर स्वर्ग-चिह्न, रत्नखचित प्रासादावली और चिन्तामणिसमूह, कलिकलुषभयसे गंगाजलमें अवस्थान करते हैं, इसलिये ही कलिकालमें इष्टसिद्धिदायिनी गंगाकी सेवा करना कर्त्तव्य है। सूर्य्योदयमें अन्धकारराशिकी तरह, वज्रपातके भयसे, पर्व्वतवृन्दकी तरह, गरुड़दर्शनसे, सर्पकुलकी तरह, पवनाहत मेघ-मालाकी तरह, तत्त्वज्ञानोदयसे अज्ञानकी तरह, सिंहदर्शनसे पशुगणकी तरह, सकल पाप, गंगादर्शनसे ही म्रियमाण होते हैं। उत्तम औषध सेवनसे सम्पूर्ण रोग जैसे नष्ट होते हैं, लोभाभिभवसे जैसे गुणराशि लुप्त होती है, अगाधहृदमें अवगाहन करनेसे ग्रीष्मतापसमूह जैसे विदूरित होता है, अग्निस्फुलिङ्गसे जैसे तुलाराशि (रूईपुञ्ज) तत्क्षणात् भस्मसात् होती है, उसी प्रकार गंगाजल स्पर्शमात्रसे तत्क्षणात् असंशयसे दोषराशि विदूरित होती है। क्रोधोदयसे जैसे तपस्या नष्ट होती है, कामदोषसे जैसे विवेक विलुप्त होता है, नीतिके अभावसे जिस प्रकार लक्ष्मी चली जाती हैं, अभिमानसे जैसे विद्या नाश होती है, दम्भ कौटिल्य, और मायावशसे जैसे धर्म्मनाश होता है; उसी तरह गङ्गादर्शन मात्रसे ही पापराशि नष्ट होती है। विद्युत्स्फुरणचञ्चल दुर्लभ मनुष्यजन्म पाकर जो लोग गङ्गासेवन करते हैं, इस जगतमें वह अतीव बुद्धिमान हैं। जो सब मनुष्य निष्पाप हैं, वह पृथ्वीमें ही गङ्गाको, सहस्र सूर्य्यसदृशी परमःज्योतिस्वरूपा अवलोकन करते हैं। पापप्रतिहतनेत्र नास्तिकलोग गङ्गाको साधारणजलपूर्णा साधारण नदीके सदृश अवलोकन करते हैं। मैंने दया करके जनगणको संसारमोचन करनेके लिये गङ्गातरङ्गरूपी स्वर्गसोपान निर्म्माण कर रखा है। श्रीमती गङ्गाके तीरमें, सर्व्वदा ही शुभ और सब लोग ही दानके पात्र हैं। सब यज्ञोंमें जैसे अश्वमेधयज्ञ, सब पर्व्वतोंमें जैसे हिमालय, व्रतसमूहमें जैसे सत्य, दान समुदायमें जैसे अभयदान, तपस्याओंमें जैसे प्राणायाम, सम्पूर्ण मन्त्रोंमें जैसे प्रणव, धर्म्मोंमें जैसे अहिंसा, सम्पूर्ण-काम्य वस्तुओंमें जैसे लक्ष्मी, विद्यासमूहमें

जैसे ब्रह्मविद्या, स्त्रियोंमें जैसे गौरी, हे पुरुषोत्तम! सम्पूर्ण देवतोंमें जैसे तुम, और सब पावोंमें जैसे शिवभक्त प्रधान हैं, उसी प्रकार सब तीर्थोंमें गङ्गा तीर्थ ही श्रेष्ठ है! हे हरे! जो महामति तुममें और मुझमें अभेदज्ञान रखते हैं, वही शिवभक्त हैं, वही महापाशुपत हैं। यह पुण्यवाहिनी गङ्गा, पापरूप धूलपटलकी उड्डयनकारिणी महावात्या; यह पापपादपच्छेदनमें कुठाररूपिणी और पापदारुचय दाहनमें दावानलस्वरूपा हैं। नानारूपसम्पन्न पितृगण सर्व्वदा यह सब गाथा कीर्त्तिन करते हैं, कि हमलोगोंके वंशमें गङ्गास्नायी कौन सन्तान जन्मग्रहण करेगा; दीन, अनाथ और दुःखियोंको परितृप्त करके भी श्रद्धा और विधिपूर्व्वक गङ्गास्नान करके देवता, ऋषिगणका तर्पण करनेके पश्चात् हमलोगोंकी पर्ब्बाविपूर्ण जल प्रदान करेगा, शिव और विष्णुके प्रति समदर्शी, भक्तिपूर्व्वक शिवविष्णुमन्दिरनिर्म्माता शिव-विष्णुमन्दिरमार्ज्जनादिकारी सन्तान हमलोगोंके वंशमें हो। इच्छासे हो या अनिच्छासे ही हो, गङ्गाजीमें मरनेसे, क्या मनुष्य, क्या तिर्य्यक्जाति, आदि कोई क्यों न हो, उसे घोर नरक दर्शन नहीं होता। जो लोग गङ्गाजीके तीरमें रहकर और तीर्थकी प्रशंसा करते हैं और गङ्गाजीका आदर नहीं करते, वह लोग नरकमें जाते हैं। जो पुरुषाधम हमारे, तुम्हारे और गङ्गाके प्रति द्वेष करते हैं, वह आत्मीयगणके सहित घोर नरकमें जाते हैं। षष्टि सहस्र मदीयगण, सर्व्वदा गङ्गाकी रक्षा करते हैं; वह असत्त और पापिष्ठगणके गङ्गावासमें विघ्न करते हैं। वह काम, क्रोध महामोह और लोभादि निर्म्मित शरनिकर द्वारा मनुष्यगणकी गङ्गावासबुद्धि छेदन करते हैं और गङ्गावास करने भी नहीं देते। जो लोग गङ्गावास करते हैं, वही मुनि, वही पण्डित, और उसी मनुष्यको ही धर्म्म, अर्थ काम, मोक्षमें कृतार्थ जानेंगे। एकबार गङ्गास्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है, गङ्गामें पितृतर्पण करनेसे, उनलोगोंका नरकसागरसे उद्धार किया जाता है। जो पुण्यवान् व्यक्ति एक मास निरन्तर गङ्गास्नान करते, वह व्यक्ति जितने दिन इन्द्र रहते हैं, उतने दिन पूर्व्वपुरुषोंके साथ इन्द्रलोकमें वास करते हैं। जो निरन्तर एक वर्ष गंगा स्नान करते, वह मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्त हो सुखसे वास करते हैं। जो मनुष्य यावज्जीवन प्रत्यह गङ्गास्नान करता है, उसे जीवनमुक्त ही जानो और देहान्त होनेपर वह निर्म्माण मुक्ति हो पाता है। गङ्गाजलमें, तिथि, नक्षत्र, पर्व्वादिकी अपेक्षा करनेका प्रयोजन नहीं; गङ्गास्नान करने होसे सञ्चित पाप विनष्ट होते हैं। जो मनुष्य सुखसेव्य गङ्गातीरका आश्रय

नहीं करते, वह पण्डित होनेपर भी मूर्ख हैं, शक्तियुक्त होनेपर भी अशक्त हैं। यदि गङ्गासेवा ही न की गई, तो रोगशून्य जीवनका फल क्या है, विस्तृत सम्पत्तिका ही क्या प्रयोजन और निर्म्मल बुद्धिकी ही क्या आवश्यकता है? जो मनुष्य गङ्गाप्रतिमूर्त्तिके लिये मन्दिर निर्म्माण करा देते हैं, वह विविध प्रकारके भोग करके परलोकसे गङ्गालोकमें वास करते हैं। जो लोग सादर, नित्य गङ्गामाहात्म्य श्रवण कर धनदान द्वारा पाठकको सन्तुष्ट करते हैं, उन लोगोंको गङ्गास्नानका फल होता है। जो मनुष्य, पितृगणके उद्देशसे गङ्गाजल द्वारा शिवलिङ्गको स्नान कराते हैं, उनके पितृगण, महानरकमें रहनेपर भी सन्तोष पाते हैं। आठबार मन्त्रपूत सुगन्धि वस्त्रपूत गङ्गाजल द्वारा लिङ्गको स्नान करानेसे घृत द्वारा स्नान करानेकी अपेक्षा अधिक फल है, पण्डित लोग यह कहते हैं। जो मनुष्य गङ्गाजलके सहित निम्नलिखित अष्टविधिद्रव्य, साढ़े द्वादश पल परिमित पात्रमें लेकर सूर्य्यको एकबार मात्र अर्घ्य देते हैं; वह स्वयं पितृगणके सहित, अति तेजस्वी विमान योगसे जाकर सूर्य्यलोकमें सम्मानपूर्व्वक वास करते हैं। जल, गो-दुग्ध, कुशाग्र, गव्यघृत, मधु, गव्यदधि, रक्त करवीर और रक्तचन्दन यह अष्टाङ्ग अर्घ्य सूर्य्यको अतीव सन्तोषप्रद जान कहा गया है। हे विष्णो! अन्य जलसे गङ्गाजलमें कोटि गुण फल है। जो सुबुद्धि मनुष्य हैं और शक्त्यनुसार गङ्गातीरमें देवालय निर्म्माण कराते, उन्हें अन्य तीर्थकी प्रतिष्ठाकी अपेक्षा उससे कोटिगुण अधिक फल होता है। अन्यत्र अश्वत्थ, वट, आम्र प्रभृति वृक्षारोपणसे जो फल होता है और अन्यत्र वापी, कूप, तड़ाग, पानीयशाला, अन्नसत्र और पुष्प वाटिकादि प्रतिष्ठासे जो पुण्य होता है, गङ्गादर्शनमात्रसे वही पुण्य मिलता है, गङ्गास्पर्शसे तदपेक्षा अधिक पुण्य है। कन्यादान गोदान अन्नदानसे जो पुण्य है, गण्डूषमात्र गङ्गाजल पीनेसे उससे शतगुण पुण्य होता है। हे जनार्द्दन! सहस्र चान्द्रायणसे जो पुण्य होता, गङ्गाजल पानसे तदपेक्षा अधिक फल प्राप्त होता है। हे हरे! भक्तिपूर्व्वक गङ्गास्नानका और क्या फल कहें, अक्षय स्वर्ग अथवा निर्व्वाण-मुक्ति ही इसका फल है। जो मनुष्य, गङ्गायुगल पादुकाको नित्य पूजा करते, वह दीर्घ आयु, पुण्य, धन, बहुपुत्र स्वर्ग और मुक्ति पाते हैं। हे हरे! गङ्गाके तुल्य, कलिकलुषनाशी तीर्थ और नहीं है और अविमुक्त क्षेत्रके समान मुक्तिप्रद क्षेत्र और नहीं है। यमकिङ्करगण, गङ्गास्नानरत मनुष्यके दर्शनमात्र हीसे सिंहदर्शनसे मृगगणके सदृश दश दिशाको भागते हैं। गङ्गाभजननिरत, गङ्गातीरवासी, मनुष्यकी यथोचित पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है। पवित्र गङ्गातीरमें, भक्ति-